भाकृअनुप
ICAR

आज़ादी का
अमृत महोत्सव

भद्रिका पुंज

(राजभाषा पत्रिका)

प्रवेशांक वर्ष – 2022

भाकृअनुप - भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान - झारखण्ड
गौरिया करमा, बरही, हजारीबाग, झारखण्ड–825405

निदेशक की कलम से ....

भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान–झारखंड की स्थापना माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा २८ जून, २०१५ को झारखण्ड प्रदेश के हजारीबाग जनपद म किया गया। संस्थान ने पिछले सात वर्षों में विश्वस्तरीय आधारभूत संरचना और सुविधाओं के विकास पर ध्यान केन्द्रित करते हुए परास्नातक शिक्षा का कार्य प्रारम्भ किया। संस्थान के वैज्ञानिकों ने अपने–अपने क्षेत्र में शोध परियोजनाओं केमाध्यम से किसानोपयोगी ज्ञान का सृजन किया हैं जिसे सरल भाषा में प्रस्तुत करने के लिए राजभाषा पत्रिका "भद्रिका पुंज" के प्रकाशन का निर्णय लिया गया है। झारखण्ड समेत पूर्वी भारत के अनेक राज्य कृषि में द्वितीय हरित क्रांति लाने के लिए तैयार है। यहाँ की मिट्‌टी एवं जलवायु को ध्यान में रखते हुए टिकाऊ खेती की तकनीकों की अत्यधिक जरुरत महसूस की गयी है जिसमें संस्थान कृषि के साथ–साथ पशुपालन, मछलीपालन, बागवानी, खाद्य प्रसंस्करण आदि के क्षेत्र में प्रमुख भूमिका निभा सकते है।

राजभाषा पत्रिका "भद्रिका पुंज" के माध्यम से इन अनेक विषयों पर प्रकाश डाला गया हैं। हमें उम्मीद है कि इसके प्रकाशन से पूर्वी भारत सहित देश के अनेक भागों के किसान और उद्यमी अद्यतन एवं उन्नत तकनीकों का लाभ लेकर अपने जीविकोपार्जन एवं जीवनस्तर में सुधार करने में सक्षम होंगे। "भद्रिका पुंज" के प्रवेशांकवर्ष २०२२ के प्रकाशन एवं संकलन के लिए पूरे भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान–झारखंड परिवार को हार्दिक शुभकामनाएं देता हूँ।

अशोक कुमार सिंह
निदेशक

आमुख

देश की बढ़ती हुई जनसंख्या के खाद्य सम्बन्धी जरूरतों को पूरा करना एक बढ़ी चुनौती है। पूर्वी भारत में यह और ज्यादा महत्वपूर्ण तथा कठिनतम हो जाता है क्योंकि यहाँ पर प्रति इकाई क्षेत्रफल कृषि उत्पादकता काफी कम एवं कृषि उत्पादन प्राकृतिक आपदाओं से अधिक प्रभावित होता जिससे कृषि उत्पादन की क्षमता और संभावनाओं के बीच एक बड़ा अंतर दिखाई देता है। इस समस्या के माकूल हल के लिए नवीनतम शोध एवं प्रौद्योगिकी के समावेश की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने कृषि अनुसंधान और शिक्षा को सुदृढ़ बनाने के दृष्टि से भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान–झारखण्ड की स्थापना २०१५ में की है जिससे इस क्षेत्र में ज्ञान आधारित कृषि एवं सम्बंधित विकल्पों को बढ़ावा दिया जा सके।

संस्थान इस दिशा में योजनाबद्ध तरीके से कार्य करते हुए अनेक तकनीकों एवं प्रौद्योगिकियों को यहाँ के आबो हवा और जरूरतों के अनुरूप परिस्कृत किया है जिसे सरल एवं स्पष्ट भाषा में प्रचार प्रसार के लिए "भद्रिका पुंज" नामक पत्रिका के माध्यम से सामान्य लोगों तक पहुंचाने का एक सराहनीय प्रयास किया गया है। इस पत्रिका के प्रवेशांक वर्ष में कृषि, पशुपालन, पर्यावरण संतुलन, सूक्ष्म उद्यमिता आदि विषयों को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिक विचारों को समाहित करने का प्रयास किया गया है। मुझे उम्मीद है कि इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों से कृषि एवं पशुपालन से जुड़े अनेक भागीदारों को सहायता मिलेगी। मैं पत्रिका के प्रकाशन से जुड़े सभी वैज्ञानिकों एवं अन्यान्य साथियों को बधाई एवं शुभकामनाएं देता हूँ।

विशाल नाथ
विशेष कार्य अधिकारी

भद्रिका पुंज

(राजभाषा पत्रिका)

प्रवेशांक वर्ष – 2022, अंक 01

संरक्षक

डॉ. अशोक कुमार सिंह
निदेशक

संपादक

डॉ. विशाल नाथ
डॉ. मनोज चौधरी

राजभाषा कार्यकारिणी समिति

डॉ. मनोज चौधरी, अध्यक्ष
डॉ. अनिमा महतो
डॉ. प्रीती सिंह
डॉ. शिल्पी केरकेट्टा

प्रकाशक

निदेशक
भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान – झारखण्ड
गौरिया करमा, बरही, हजारीबाग, झारखण्ड – 825405
दूरभाषः +91–11–25842367
फैक्सः +91–11–25846420
वेबसाइटः www.iari.res.in
ई–मेलः director@iari.res.in

प्रकाशन : जून, 2022

विषय सूची

01. फलदार वृक्षों की वैज्ञानिक खेती : झारखण्ड में आत्मनिर्भरता एवं संतुलन का शानदार विकल्प
विशाल नाथ, कृष्ण प्रकाश एवं दीपक कुमार गुप्ता

02. फसल अवशेष प्रबंधनः मृदा उर्वराशक्ति एवं पर्यावरण के लिए आवश्यक
मनोज चौधरी, प्रिय रंजन कुमार, हिमानी प्रिया, प्रीती सिंह, दीपक कु. गुप्ता एवं विशाल नाथ

03. वर्मीकम्पोस्टिंग द्वारा कृषि अपशिष्ट का पुनर्चक्रणः प्राकृतिक खेती का महत्वपूर्ण घटक
दीपक कुमार गुप्ता, पंकज कुमार सिन्हा, सुरेनधर पी, शिल्पी केरकेट्टा, प्रीती सिंह, कृष्ण प्रकाश, मनोज चौधरी, चंदन कुमार गुप्ता, अशोक कुमार एवं विशाल नाथ

04. खाद्य एवं जलवायु सुरक्षा में कृषिवानिकी की भूमिका
सुशील कुमार, अशोक यादव, सुकुमार तरिया, बद्रे आलम, प्रियंका सिंह, आर. पी. दिवेदी एवं ए. अरुणाचलम

05. पशुओं को चारा आधारित पोषण
सनत कुमार महन्ता एवं शिल्पी केरकेट्टा

06. जीवाणु खादः किसानों के लिए एक वरदान
हिमानी प्रिया, रंजीत सिंह, मनोज चौधरी, शिव मंगल प्रसाद एवं अमन जायसवाल

07. झारखण्ड में गुणवत्ता युक्त प्रोटीन एकल संकर मक्का के बीज उत्पादन की तकनीक
संतोष कुमार, प्रीती सिंह, नितीश रंजन प्रकाश, अशोक कुमार, मोना नगरगड़े, विशाल त्यागी

08. मृदा स्वास्थ्य सुधार और सतत कृषि के लिए तकनीकी सुझाव
राहुल मिश्रा, धीरज कुमार, निशांत कुमार सिन्हा, जितेंद्र कुमार, मनोज चौधरी, सोमसुंदरम जयरामन एवं अशोक कुमार पात्र

09. कटहल : मूल्य संवर्धन एवं इसकी संभावनाएं
रंजीत सिंह, हिमानी प्रिया, शिवमंगल प्रसाद एवं विशाल नाथ

10. झारखण्ड में मक्के के फसलों में पोषक तत्व प्रबंधन
प्रीती सिंह, संतोष कुमार, दीपक कुमार गुप्ता, मनोज चौधरी, अशोक कुमार, मोना नगरगड़े एवं विशाल त्यागी

11. धान के प्रमुख रोग एवं प्रबंधन
आशा कुमारी, चन्दन महाराणा एवं कृष्णकांत मिश्रा

12. धान की परती भूमि में दलहन खेती को प्रोत्साहित करने में सहभागी फसल चयन की भूमिका
अनिमा महतो एवं मोनू कुमार

13. कृषि में पशुधन की भूमिका
शिल्पी केरकेट्टा, सनत कुमार महंता, पंकज कुमार सिन्हा, दीपक कुमार गुप्ता एवं कृष्ण प्रकाश

14. पॉली हाउस टमाटर में रोग प्रबन्धन
दुर्गेश सिंह, आशीष कुमार सिंह, कृष्णा रघुवंशी, चन्दन महाराणा एवं आशा कुमारी

15. किसान उत्पादक संगठन (एफ.पी.ओ.) का गठन और सम्बर्धन
इन्द्रजीत, दुष्यंत कुमार राधव, वीरेन्द्र कुमार यादव, धर्मजीत खेरवार, सन्नी कुमार एवं शशिकान्त चौबे

उद्धरणः भद्रिका पुंज, प्रवेशांक वर्ष 2022, अंक 01, राजभाषा अनुभाग, भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान – झारखण्ड गौरिया करमा, बरही, हजारीबाग, झारखण्ड – 825405

फलदार वृक्षों की वैज्ञानिक खेतीः झारखण्ड में आत्मनिर्भरता एवं पर्यावरण संतुलन का शानदार विकल्प

विशाल नाथ, कृष्ण प्रकाश एवं दीपक कुमार गुप्ता

भाकृअनुप– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, गौरिया करमा, हजारीबाग, झारखण्ड– 825405

झारखण्ड़ प्रदेश के अधिकांश भू – भाग पठार, एवं उपराऊ जमीन के रूप में बहुत कम उपयोगी हो रही हैं। यहां की मिट्टी में जलधारण क्षमता एवं पोषक तत्वों की कमी, संरचनात्मक दृष्टि से अनेक बाधाएं एवं भूमि की ढ़लान के साधनो की कमी सिंचाई आदि परिस्थितियां यहां एक वर्षीय फसलों की खेती के क्षेत्रफल को सीमित करती है, जबकि दूसरी और बहुवर्षीय फल फसलों में मैजूद अनेक खूबियां जैसे गहरी जड़ें, सूख के प्रति सहनशीलता, अच्छे गुणवत्ता के उत्पादन की क्षमता आदि इस ओर इशारा करते हैं कि यदि इस क्षेत्र में फल फसलों की खेती को बढ़ावा दिया जाय तो यह क्षेत्र आत्मनिर्भरता के साथ–साथ फल निर्यात के एक बेहतर विकल्प के रूप में विकसित हो सकता है।

झारखण्ड समेत पूर्वी भारत के अनेक राज्यों जैसे उड़ीसा, छतीसगढ़ का उत्तरी हिस्सा, प० बंगाल का दक्षिण भाग, बिहार के दक्षिण जिले तथा उत्तर प्रदेश का पूर्वी– दक्षिण क्षेत्र मूलतः शुष्क एंव विषम जलवायु और कम उर्वरता वाली मिट्टी के रूप में जाना जाता है। इन क्षेत्रों में कृषि के अनेक विकल्प आजमाए जा चुके हैं और उनमे कुछ हद तक सफलता भी मिली है परन्तु पर्यावरण के दृष्टिकोण से ये विकल्प कुछ हद तक असंतुलित और खर्चीले साबित हो रहे हैं। इनमे लागत और आमदनी का अनुपात इस क्षेत्र के किसानों के लिए बहुत लाभदायक नही हो पा रहा है जिसके फलस्वरूप, ज्यादातर फ्जमीनें या तो खाली पड़ी रहती है या फिर उनकी फसल उत्पादन सघनता (*क्रापिंग इटेंसिटी*) 100 प्रतिशत के आस–पास ही बनी रहती हैं। देश की बढ़ती हुई जनसंख्या और लोगों की बढ़ी हुई आवश्यकता के मद्देनज़र यह विकल्प कमजोर साबित हो रहा है और आज की नौजवान पीढ़ी खेती से विमुख होती दिख रही हैं। दुसरी ओर पर्यावरण–क्षरण के खतरे से हम लोग दिन–प्रतिदिन दो–चार हो रहे हैं जिसका प्रभाव अब जलवायु चक्र, गर्मी–सर्दी के समय और सघनता तथा वर्षा के तरीके के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। इन परिस्थितियों में आज के युवा किसान व उद्यमियों को एक ऐसे विकल्प की तलाश है जो अधिक मुनाफे के साथ पर्यावरण को भी ठीक रख सके और साथ ही साथ पौष्टिक व गुणवत्ता युक्त खाद्य सामग्री भी पैदा करने में सहायक बने। वस्तुतः फल वृक्षों की वैज्ञानिक बागवानी कम खर्चीले होते हैं। अधिक बेहतर समझने के लिए यदि हम महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, तेलंगाना आदि राज्यों को देखें और तत्थ्यात्मक समालोचन करे तो पता चलता है कि इन क्षेत्रों में लगभग ऐसी ही मिट्टी एंव जलवायु दशायें होने के बावजुद वहाँ के किसान अनेक फल फसलों की खेती और उत्पादन में अपना परचम लहरा रहे हैं। चाहे नागपुर (महाराष्ट्र) का संतरा हो या रत्नागिरी का अल्फांसो आम या फिर सोलापुर का अनार; चाहे जामनगर (गुजरात) का केसर आम हो या नवसारी का सपोटा या फिर जूनागढ़ का अमरूद, ऐसे अनेक उदाहरण आपके दिमाग में आते है। तो फिर हमें भी पूर्वी राज्यों विशेषकर झारखण्ड, उड़िसा, प० बंगाल के पठारी क्षेत्रों में उपयुक्त फल फसलों जैसे आम, अमरूद, पपीता, सपोटा, बेल, शरीफा, कमलम, बेर, लीची, कटहल आदि की वैज्ञानिक बागवानी पर जोर देने की आवश्यकता है जो आत्मनिर्भरता, पोषण सुरक्षा के साथ–साथ पर्यावरण संतुलन का एक बेहतर एंव टिकाऊ विकल्प साबित हो सकता है।

फल उत्पादन में भारत/वर्ष एक अग्रणी देश है तथा विश्व में चीन के बाद क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से सबसे बड़ा राष्ट्र है। वर्तमान समय में भारत के सभी राज्यों को मिलाकर लगभग 70.5 लाख हे० क्षेत्रफल पर फलों की खेती द्वारा प्रति वर्ष 1072.4 लाख टन फल उत्पादन हो रहा है। मौजुदा समय में फलों का उत्पादन 14.59 टन/हे० है तथा प्रति व्यक्ति उपलबध्ता लगभग 200 ग्राम/दिन हो गयी है। इन उपलब्धियों के कारण ही देश की बढ़ती हुई जनसंख्या को शुद्ध फल उपलब्ध कराने तथा उनके प्रसंस्कृत उत्पाद तैयार करने के क्षेत्र में रोजगार सृजन की अपार संभावनाए देखी जा रही है जो भारत को आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर करेगी। अतः आवश्यकता इस बात की है कि फल उत्पादन के द्वारा

भविष्य में एक स्वस्थ और आत्मनिर्भर भारत का सपना देखा जाए और उसे पूरा करने का प्रयास पूर्ण मनोयोग से किया जाए। पूर्वी भारत के राज्यों के प्रयास इस भागदारी को सुनिश्चित करने में नकाफी रहे हैं (सारणी १)। अतः इन प्रदेशों में पोषण सुरक्षा हेतु ताजे फलों एंव मूल्य–सवंर्धित पदार्थो की बढ़ती मांग की पूर्ति कैसे हो यह विचारणीय विषय है क्योंकि यहाँ पर उपयोग होने वाले सभी फल बाहर से मंगाये जाते हैं जो कि महँगे होने के साथ–साथ अच्छी गुणवत्ता रहित होते हैं। पर्यावरण के दृष्टि से भी दिन–प्रतिदिन हो रही वृक्षों की कटाई और नए वृक्षों के रोपन के प्रति उदासीनता एक समस्या होती जा रही है इसलिए फलदार वृक्षों की रोपाई और उनसे मिलने वाले फल, इन दोनों समस्याओं के निराकरण में कारगर हो सकते हैं।

किसानों की आय बढ़ाने के विकल्प के रूप में भी फल उत्पादन एंव विपणन, ग्रामीण क्षेत्रों में लघु उद्योग को बढ़ावा देने के लिए फलोंत्पादन से जुड़े उत्पादन इकाईयों की स्थापना, रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध करवाने हेतु विशेष प्रशिक्षण और आधारभूत संरचना विकास पर बल देकर यह कार्य सम्भव किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, अद्यतन वैज्ञानिक ज्ञान एंव नई शोध उपलब्धियों जैसे – सेंसर आधारित तकनीक, ड्रोन उपयोग, डायग्नोस्टिक तकनीक, टिश्यू कल्चर द्वारा पौधा बनाना, सघन बागवानी, छत्रक प्रबंधन, टपक सिंचाई के साथ उवर्रकों का प्रयोग, जैव कीटनाशाकों का उपयोग, स्मार्ट पैकेजिंग, प्रसंस्करण में ऑटोमेशन, ई–मार्केटिंग आदि के सफल समन्वयन द्वारा फल उत्पादन और रोजगार सृजन को बढ़ावा देने की अपार संभावनाए भी इन प्रदेशों में मौजुद हैं जो आत्मनिर्भर भारत के सपने को साकार करने में सहायक सिद्ध होगी।

भारत में बागवानी विकास की प्रक्रिया अत्यंत रोचक रही है। देश की आजादी से पूर्व सन् १९०५ में देश में छः कृषि महाविद्यालयों की स्थापना कोयम्बटूर, कानपुर, लायलपुर (अब पाकिस्तान में), नागपुर पुणे और सबौर में की गयी थी जहां पर फल–वृक्षों पर शोध कार्य प्रारंभ किये गये। इसके बाद सन् १९३६ में कन्नूर (कर्नाटक) में फलों पर आधारित प्रसंस्करण एंव शोध केंद्र की स्थापन की गयी। आज देश में फल–वृक्षों के महत्व को समझते हुये भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के अधीन पांच केंद्रीय शोध, संस्थान एंव उनसे संम्बद्ध क्षेत्रीय शोध केन्द्र तथा चार राष्ट्रीय अनुसंधान केन्द्र फल–वृक्षों पर शोध, विकास एंव प्रचार–प्रसार का कार्य कर रहे हैं। अखिल भारतीय परियोजना के अंतर्गत क्षेत्रीय समस्याओं के समाधान हेतु देशव्यापी कार्य हो रहा है। इसके अतरिक्त, देश में बागवानी के सात विश्वविद्यायलय एंव 17 संकायों में भी फल वृक्षों पर शोध कार्य किया जा रहा है। देश के अधिकांश कृषि विश्वविद्यायलयों/एंव अन्य विश्वविद्यायलयों में भी फल विज्ञान पर अलग से विभागी कार्य हो रहे हैं, जहां फल वृक्षों के उत्पादन, उत्पादकता एव गुणवत्ता सुधार सम्बन्धी शोध किया जाता है। केन्द्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार के अधिन राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड, गुरूग्राम एवं राज्य सरकारों के अधीन बागवानी निदेशालय भी फल वृक्षों के शोध एवं प्रसार कार्य को बढ़ावा दे रहे हैं। झारखण्ड में बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का क्षेत्रीय केन्द्र, पलांडु तथा भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान झारखण्ड, हज़ारीबाग फल उत्पादन की आधुनिक तकनीक पर कार्य कर रहे हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात खाद्यान्न उत्पादन पर विशेष बल दिया गया और सत्तर के दशक में हरित क्रांति की सफलता से देश ने खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त की। इसके बाद इस बात पर विचार – विमर्श होने लगा कि खाद्य सुरक्षा के साथ–साथ प्रत्येक नागरिक को उचित पोषण भी मिले। जब भोजन में संतुलित एवं गुणवत्ता पोषण की बात की जाती हैं, तब बागवानी फसलें विशेषकर फल एवं सब्जियों का महत्व और भी बढ़ जाता है। संतुलित पोषण से तात्पर्य भोजन में सभी आवश्यक तत्वों जैसे– प्रोटीन, वसा, कार्ब्रोहाड्रेट, विटामिन, खनिज आदि का प्रचुर मात्रा में होना आवश्यक है। अतः अब इन्द्रधनुषी क्रांति की तरफ बढ़ना आवश्यकता ही नहीं, बल्कि फल उत्पादन के क्षेत्र में एक केन्द्रीय भूमिका निभाने वाला है। शायद इसी दृष्टिकोण से संयुक्त राष्ट्र आम सभा ने वर्ष २०२० – २१ को फल एवं सब्जियों का वर्ष घोषित किया था। फलों को भोजन का एक हिस्सा बना लेने से अधिकांश पोषक तत्तवों की आवश्कताओं की पूर्ति स्वतः हो जाती है। फलों में आम, पपीता, आनार, केला, सेब, खुबानी, आदि

विटामिन 'ए' के मुख्य स्त्रोत हैं तथा बारबाडोस चेरी, आँवला, नींबू, अमरूद, कीवी, स्ट्रॉबेरी, अन्नानास आदि विटामिन 'सी' के स्त्रोत हैं। सेब, केला, अनार, फालसा, करौंदा, शहतूत आदि लौह खनिज तथा खुबानी, संतरा, अन्नानास, लीची, पपीता आदि में कैल्शियम भरपूर मात्रा में पाया जाता है इसके अतिरिक्त, फलों के सेवन से शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है एवं विभिन्न रोगों की रोकथाम में सहायता मिलती है जिससे स्वस्थ शरीर और प्रखर बुद्धि का विकास होता है। उदाहरण के लिए खजूर, केला, पपीता, आदि के सेवन से तुरंत उर्जा का संचार होता है। विटामिन 'ए' से परिपूर्ण फलों के सेवन से आँख की रोशनी तेज होती है और त्वचा एवं प्रजनन संबंधी विकार दूर होते हैं तथा शरीर का सम्पुर्ण विकास होता है। इसी प्रकार, विटामिन 'सी' से धनी फलों के सेवन से सर्दी–जुकाम की समस्या से छुटकारा मिलता है। लौह तत्व वाले फलों के सेवन से खून की कमी (रक्त अल्पात) दुर होती है तथा प्रचुर मात्रा में कैल्शियम वाले फलों के सेवन से हड्डियां मजबूत होती है एवं दातों की समस्या से निजात मिलता है। फलों में एंटीऑक्सीडेंट भी प्रचुर मात्रा में मिलता है, जिसके कारण विभिन्न रोग समाधान में लाभ मिलता है।

फलोत्पादन में भारतीय परिदृश्य

भारत अग्रणी फल उत्पादक देश है एवं फल वृक्ष जैसे – आम, जामुन, आंवला, बेर, बेल, कटहल, करौंदा, फालसा, कैंथ, आदि भारत के देशज हैं। भारत में फल उत्पादन वर्ष १९५०–५१ से वर्ष २०२०–२१ तक लगभग ११ गुना बढ़ गया है। देश में फल उत्पादन के अंतर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन लगभग लगतार बढ़ता जा रहा है। उत्पादकता 14.59 देश के प्रमुख फलों में आम, केला, नींबूवर्गीय फल, पपीता, अमरूद, सेब, अनार, अंगूर, चीकू, अनन्नास, लीची आदि है। भारत में उगाये जाने वाले कुछ फल वृक्ष जैसे– आम, अंगूर, अनार, केला, पपीता, चीकू आदि की उत्पादकता विश्व की औसत उत्पादकता से या तो अधिक है या उसके समकक्ष है।

प्रमुख फल उत्पादक प्रदेशों में उत्तर प्रदेश में आम, अमरूद एवं आंवला का उत्पादन सबसे ज्यादा होता है जबकि आन्ध्र प्रदेश में केला, पपीता एवं मौसम्मी का उत्पादन सर्वाधिक होता है। इसी प्रकार अंगुर और अनार का महाराष्ट्र में, चीकू एवं नींबू गुजरात में तथा संतरा मध्य प्रदेश में एवं अनन्नास प० बंगाल में सबसे ज्यादा पैदा होता है।

सारणी 1: विभिन्न फलों का उत्पादन करने प्रमुख प्रदेश

फल	अधिकतम उत्पादन		अधिकतम उत्पादकता	
	प्रदेश	उत्पादन (मीट्रिक टन)	प्रदेश	उत्पादकता (टन/हे०)
आम	उत्तर प्रदेश	455.81	राजस्थान	17.64
अमरूद	उत्तर प्रदेश	928.44	आंध्र प्रदेश	24.12
पपीता	आंध्र प्रदेश	1687.22	आंध्र प्रदेश	93.72
अंगुर	महाराष्ट्र	2286.44	पंजाब	28.67
केला	आंध्र प्रदेश	5003.07	मध्य प्रदेश	69.54
अनार	महाराष्ट्र	1789.46	तमिलनाडु	23.39
संतरा	मध्य प्रदेश	2103.64	पंजाब	23.40
मौसम्बी	आंध्र प्रदेश	2003.11	आंध्र प्रदेश	24.17
नींबू	गुजरात	605.62	कर्नाटक	23.37
अनन्नास	प० बंगाल	345.15	कर्नाटक	62.42
चीकू	गुजरात	326.36	तमिलनाडु	29.50
आंवला	उत्तर प्रदेश	384.34	तमिलनाडु	20.56

विश्व पटल पर फलों के उत्पादन में भारत का प्रमुख स्थान है। स्वतंत्रता प्राति के बाद विभिन्न स्तर पर किये गये संयुक्त प्रयासों के फलस्वरूप देश में सुनहरी क्रांति परिलक्षित हुई है। यह क्रांति बागवानी में नये–नये अनुसंधानों जिनमें उन्नतशील प्रजातियों का विकास, कलमी पौधों का रोपण, समस्याग्रस्त भूमि एवं जैविक कारकों के लिए मुलवृन्तों का प्रयोग, पौधों की संघाई व काँट–छाँट द्वारा छत्रक प्रबंधन, सघन बागवानी, बूंद–बूंद विधि से सिंचाई एवं उसके साथ उवर्रकों के अनुप्रयोग, उचित पोषण आदि से संभव हुआ है। कीट एवं रोगों की रोकथाम के लिए समन्वित प्रबंधन करना जरूरी है, जिसमें कीटों एवं रोगों को अधिक हानि स्तर से नीचे रखना होता है। इसमें प्रयुक्त तकनीकियों में जलवायु अनुसार फसल व किस्मों का चुनाव, बीजोपचार, पौधा उपचार, बगीचे की गहरी ग्रीष्मकालीन जुताई, समय पर निराई–गुराई, मित्र कीटों का संचरण, जैव व रासायनिक कीट व रोगनाशकों का अनुप्रयोग आदि समाहित है। फल उत्पादन में हुई अभूतपूर्व वृद्धि में उन्नत प्रजातियों का प्रमुख योगदान है। कुछ व्यावसायिक फल वृक्षों की उन्नतशील प्रजातियों को सारणी–2 में दर्शया गया है।

सारणी 2: पूर्वी भारत के लिए उपयुक्त प्रमुख फल एवं उनकी किस्में

फल फसल	उन्नत किस्में
आम	मल्लिका, आम्रपाली, लंगड़ा, चौसा, दशहरी, नीलम, ज़र्दालु, पूसा श्रेष्ठ, पूसा पीताम्बर, पूसा अरूणिमा, पूसा सूर्या, पूसा प्रतिभा, पूसा लालिमा, अर्का अनमोल, अर्का सुप्रभात, अर्का नीलकिरण, अर्का अरूणा,अर्का नीलाचल केशरी
अमरूद	सरदार, ललित, इलाहाबाद सफेदा, स्वेता, पूसा सृजन, पंत प्रभात, धवल, लालिमा, अर्का पूर्णा, अर्का रश्मि, अर्का मृदूला, अर्का अमूल्य, अर्का किरण
बेल	स्वर्ण वसुधा, एन. बी–5, एन. बी–6, एन. बी–9, एन. बी–16, पंत शिवानी, पंत उर्वशी, पंत अपर्णा, पन्त सुजाता , थार नीलकंठ, थार दिया, गोमा याशी, सबौर बेल, सीआईएसएच बी–1, सीआईएसएच बी– 2,
शरीफा	बालानगर, महबूबनगर, लाल शरीफा, गोल्डेन शरीफा, मम्मोथ, अर्का नीलाचल विक्रम, वाशिंगठन
नींबू	कागजी कलां, पंत लेमन 1, यूरेका, प्रमालिनी, विक्रम, साईं सव्रती, फूलो सब्रती, पूसा अभिनव, उदित, कागज़ी नींबू, रसराज, जयदेवी, बालाजी
मौसम्बी	पूसा राउंड, पूसा शरद, वाशिंगटन नेवल, माल्टा ब्लडरेड, जफा, वेलेसिया लेट, सथगुड़ी, हेमलिन।
बेर	गोला, उमरान, रश्मि, बनारसी कडाका, कैथली, थार सेविका, गोमा कीर्ति, एपल बेर, थाई बेर, थार भुवराज, थार मालती, नरेंद्र बेर
पपीता	पूसा नन्हा, पूसा डिलीशियस, पूसा जायन्ट, हनी ड्यू, कुर्ग हनी ड्यू, वाशिंगटन, रेड लेडी, ताइवान, कोयम्बटूर–6, कोयम्बटूर–7, अर्का प्राभात
आँवला	गोमा ऐश्वर्या, कंचन, कृष्ण, अमृत, नीलम, चकिया, लक्ष्मी, आगरा बोल्ड, आनंद–1
केला	डवाफ्रा कवेंडीश, कदली, रोबस्टा, नेपुवान, पुवन, रस्थाली, जी 9
लीची	शाही, बेदाना, स्वर्ण रूपा, स्वर्ण मधु, पूर्वी, कलकतिया, अर्ली सिडलेस, मुजफ्फरपुर, देहरादून, सहारनपुर, चाइना, गंडकी संपदा, गंडकी योगिता, गंडकी लालिमा, सबौर मधु, सबौर प्रिया
अनार	गणेश, भगवा, जलौर सिडलेश, रूबि, ज्योति, मृदुला, सोलापुर लाल, सुपर भगवा, मस्कट, जोधपुर लाल, विशाल, फुले अनारदाना
जामुन	सीआईअसएच– जे37, सीआईअसएच– जे42, गोमा प्रियंका, थार क्रांति, राम जामुन, नरेंद्र जामुन, राजेंद्र जामुन, बदाम, काथा
चीकू	कालीपत्ती, क्रिकेट बॉल, पीकेएम– 1, पीकेएम– 2, पीकेएम–3, पीकेएम– 5, सीओ– 1, डीएसच– 1, पाला
कटहल	पलूर जैक, स्वर्णा, स्वर्ण मनोहर, स्वर्ण पूर्ति, सिद्ध, सिंदूर, शंकरा, सिलोन जैक

भारत में मृदा एवं जलवायु की विविधता बहुत ही अधिक है। इसके कारण लगभग सभी प्रकार के उष्ण, उपोष्ण एवं शितोष्ण फलों की खेती की जाती है। फल स्वास्थयवर्धक एवं औषधीय गुणों से परिपूर्ण होते हैं। फल की खेती अधिक उत्पादकता में सक्षम, अधिक मानव दिवस का सृजन, भूमि के क्षरण को रोकने एवं मृदाशक्ति बढ़ाने में उपयोगी, पर्यावरण में संतुलत बनाये रखने के साथ–साथ स्थान विशेष की सुंदरता बढ़ाने में सक्षम होती है। फलदार वृक्ष विभिन्न स्थानो जैसे शुष्क कृषि क्षेत्रों, वर्षा आधारित क्षेत्रों, पहाड़ी रेगिस्तानी, तटिय क्षेत्रों के साथ–साथ ऊसर, बंजर एवं परती भूमि पर रोपित किये जा सकते है। सस्य फसलों की तुलना में फल वृक्षों से अधिक रोजगार सृजन (860 मनाव श्रम दिवस) किया जा सकता है।

राज्यवार फलोत्पादन की स्थिति

फलों के अंतर्गत क्षेत्रफल की दृष्टि से आंध्र प्रदेश (15.65%) का सबसे बड़ा योगदान है तत्पश्चात क्रमशः महाराष्ट्र (12.05%)/उत्तर प्रदेश (10.82%)/गुजरात (9.24%)/मध्य प्रदेश (7.62%) एवं कर्नाटक 7.4%) का स्थान है। किन्तु उत्पादन की दृष्टि से महाराष्ट्र का योगदान (11.58%) सबसे अधिक है उसके बाद आंध्र प्रदेश (10.0%), उत्तर प्रदेश (7.3%) कर्नाटक (6.63%), गुजरात (6.49%), एवं मध्य प्रदेश (5. 44%) का नाम आता है। इन आंकडो से यह स्पष्ट होता है कि पूर्वी भारत का कोई भी राज्य फल उत्पादन में अग्रणी नहीं है परन्तु उनमे क्षमता विद्यमान है। अब जरूरत इस बात की है कि जो राज्य फल उत्पादन के दृष्टि से बेहतर है वहां इसके वैज्ञानिक खेती को बढावा मिले। राज्य में मौजूद जलवायु, मृदा, उवर्रत, सिचाई के साधन, पोषण एवं कीट–व्याधि के उचित नियंत्रण आदि की सुविधा के अनरूप योजनाबद्ध तरीके से प्रयास निश्चित ही इस दिशा में सकारात्मक परिणाम दे सकते हैं। अधिक उत्पादन के लिए उचित किस्मों, छत्रक प्रबंधन, मूलवृन्तों का प्रयोग, सघन बागवानी एवं उचित देखभाल भी आवश्यक माना गया है जो आत्मानिर्भर राज्य एवं देश के निर्माण की दिशा में एक पायदान की तरह है क्योंकि इन सभी कार्यों एवं वस्तुओं के लिए कहीं न कहीं रोजगार तथा धनार्जन के अवसर उत्पन्न होते हैं।

आत्मनिर्भरता से एक कदम आगे

भारत में उत्पादित फलों का घरेलू उपयोग के साथ–साथ प्रति वर्ष विदेशों में निर्यात भी किया जाता है। बागवानी फसलों की कुल निर्यात का लगभग 31.98% ताजे फलों एवं सुखे मेवे से आता है। जिन फलों का भारत से निर्यात किया जाता है उनमे आम, अंगुर, केला, अनार, काजू एवं अखरोट प्रमुख है। आम का मुख्य रूप से संयुक्त अरब अमीरात, यूनाइटेड किंगडम, सऊदी अरब, कतर, अमेरिका, कुवैत, ओमान, नेपाल एवं सिंगापूर में निर्यात किया जाता है। अंगूर का नीदरलैंड, रूस, यूनाइटेड किंगडम, जर्मनी, संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब, थाईलैंउ, हांगकांग, बेलिज्यम आदि तथा केले का नेपाल, बंगलादेश, ईरान, कतर, अमेरिका, संयुक्त अरब अमीरात, ओमान, सिंगापूर, जर्मनी, हांगकांग, यूनाइटेड किंगडम, थाईलैंड, कनाडा, कोरिया आदि देशों में निर्यात किया जाता है। सेब का निर्यात मुख्य रूप से नेपाल, बंगला देश, ईरान, कतर, संयुक्त अरब अमीरात, यूनाइटेड अरब अमीरात, ओमान, सिंगापूर, जर्मनी, पनामा गणराज्य, यूनाइटेड किंगडम, थाईलैंड, लाइबेरिया किया जाता है। आजकल चीकू का भी निर्यात यूनाइटेड अरब अमीरात, बहरीन, ओमान, कतर, कनाडा, संयुक्त अरब अमीरात, यूनाईटेड किंगडम, सिंगापूर आदि को होने लगा है। एपीडा द्वारा प्रस्तुत आंकड़े के अनुसार वर्ष 2018–19 में भारत में ताजे फलों का निर्यात करके 48,173.5 करोड़ रूपये अर्जित किये हैं जो आत्मनिर्भ्ररता का घोतक है और आत्मबल को बढ़ाने वाला है।

फल उत्पादन के समक्ष चुनौतियाँ

भारत में फल उत्पादन की उपलब्धियाँ संतोषजनक है परन्तु पूर्वी भारत के कई राज्य इससे अभी तक अछूते हैं। अतः पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर होने, विदेशी मुद्रा अर्जित करने और एक स्थायी विकल्प के रूप में स्थापित होने के लिए फलोंत्पादन के क्षेत्र में अभी भी आगे बढ़ने की जरूरत है। इस दिशा में प्रमुख चुनौतियाँ निम्नलिखित हैं–

- **जनसंख्या वृद्धि** : जहाँ स्वतंत्रता के समय देश की जनसँख्या 36.1 करोड़ थी वही आज बढ़कर 136 करोड तक पहुँच चुकी है। प्रति व्यक्ति खेती योग्य जमीन की उपलब्धता भी घटती जा रही है। बढ़ती जनसंख्या के पोषण की जरूरतों को पूरा करने हेतु उत्पादन स्तर को भी जनसेख्या वृद्धि के दर से बढ़ाना होगा।
- **जलश्रोत पर दबाव** : देश में लगभग 44% भू–भाग में असिंचित तथा वर्षा आधारित खेती की जा रही है, जिसमें सिंचाई सुविधा दिए बिना उत्पादन में बढ़ोतरी संभव नहीं है। ऐसे क्षेत्रों में टपक सिंचाई एवं नमी प्रबंधन की तकनीक को अपनाकर फल उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।
- **उत्पादन गुणवता में कमी** : विश्व के कुल उत्पादन में भारत भले ही दूसरे स्थान पर है, परन्तु हमारे उत्पाद अंतर्राष्ट्रीय मानकों को पूरा करने में अक्सर विफल रहते हैं। इस कारण निर्यात में हमारी भागीदारी बहुत कम हो जाती है। घरेलु स्तर पर भी गुणवत्तायुक्त फलों की मांग बढ़ रही है।
- **तुड़ाई उपरांत प्रबंधन व भंडार की आधारभूत संरचना में कमी** : आज देश में कुल फल उत्पादन का लगभग 20–25 प्रतिशत भाग बिना उपयोग किये ही खराब हो जाता है। इसका प्रमुख कारण इन फसलों की शीघ्र खराब होने की प्रकृति, सप्लाई चेन का अभाव तथा भण्डारण सुविधाओं में कमी होना हैं। वर्तमान में हम कुल उत्पादन का 2–3 प्रतिशत भाग ही परिरक्षित कर पाने में सक्षम हैं। वहीं कुछ विकसित देशों में 70–80 प्रतिशत तक परिरक्षण किया जा रहा है। पूर्वी राज्य विषेशकर झारखण्ड तो अभी इस क्षेत्र में काफी पीछे है। अतः उत्पादन के साथ–साथ फलों का परिक्षण और मूल्य–संवर्धन हमारे समाने एक बड़ी चुनौती है।
- **निर्यात भागीदारी कम होना** : ताजे फल एंव उनके उत्पादों को निर्यात कर विदेशी मुद्रा अर्जित होती है परन्तु भारत कुल उत्पाद का लगभग 20–25 प्रतिशत ही निर्यात कर पा रहा है। निर्यात की जरूरतों के मध्य संतुलन बनाकर इसे बढ़ावा देने की आवश्यकता है।
- **जलवायु परिवर्तन का प्रभाव** : असमय बाढ़, ओले एवं पाला पड़ना, चक्रवाती तुफान आदि जैसी समस्याऔं से भी फलों के उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे नए–नए कीट एवं व्याधियों का पैदा होना भी चुनौती बनता है। इसके लिए उत्पादन के नए वैज्ञानिक तौर–तरीके एवं मौसम परिवर्तन के पूर्वानुमान पर बल देने की आवश्यकता है।
- **उत्पादन सामग्री की समयबद्ध उप्लभ्द्धता** : जहाँ एक तरफ कृषिकों तक नवीन तकनीक पहुँचाने की आवश्यकता है वहीं उत्पादन सामाग्री जैसे– गुणवत्तायुक्त पौधे/बीज, खाद–उर्वरक, पानी, उपकरण/मशीन आदि सही समय पर पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।

फलोत्पादन द्वारा रोजगार की संभावनाएं : आत्मनिर्भरता का पथ

फल उत्पादन की नवीनतम तकनीकों के साथ सरकार के विभिन्न योजनाओं (मृदा स्वास्थ्य कार्ड, फसल बीमा योजना, राष्ट्रीय किसान विकास योजना, प्रधानमंत्री सिंचाई योजना, समन्वित उद्यानिक विकास मिशन) आदि की मदद से भारत में फल उत्पादन की दिशा में रोजगार बढ़ाने की अपार संभावनाएं हैं। विश्व में आज पोषण सुरक्षा को लेकर जागरूकता बढ़ी है। ताजे फलों (आम, पपीता, सेब, केला, अंगूर, अनार, लीची, अमरूद, मौसम्बी आदि) एवं सूखे मेवे (काजु, बदाम, अखरोट, पिस्ता, छुहारा, अंजीर, किशमिश आदि) की मांग दिनों दिन बढ़ती जा रही है। अतः देश में फल उत्पादन को बढ़ाने में रोजगार का सृजन हो सकता है जिससे लोग आत्मर्भिर होंगे।

आज जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए अन्य उपाय के साथ–साथ फलों की खेती एवं फल आधारित वानिकी को विशेष बढ़ावा देकर युवकों को आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। कुछ फल वृक्ष जैसे– आंवला, बेल, जामुन, चिरोंजी, इमली, शरीफा, अंजीर, करौंदा, फालसा, लसोड़ा, खिरनी, जंगल

जलेबी, केंथ, शहतूत आदि की खेती से नये क्षेत्र का विकास किया जा सकता सकता है और पोषण सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है।

किसानों की आमदनी बढ़ाने और उन्हें आत्मनिर्भर बनाने में फलों की खेती विशेष रूप से लाभदायक सिद्ध हो रही है। वैज्ञानिक तरीके से फलों की खेतीं करके कम क्षेत्रफल से ज्यादा उत्पदान कर सकते है। फल के बगीचे में एक वर्षीय फसलों को समाहित करके तथा मधुमक्खी पालन, मुर्गी पालन आदि को जोडकर भी आमदनी बढ़ा सकते हैं और स्वावलम्बी हो सकते हैं।

फलों के परिरक्षित उत्पादों को घरेलू स्तर पर या कुटीर उद्योग के रूप में विकसित करके आमदनी को आसानी से बढ़ाया जा सकता है और विशेष ब्रांड स्थापित करके लाभ लिया जा सकता है।

बगवानी से जुड़े अनेक उद्यम जैसे– नर्सरी, मधुमक्खी पालन, *पैकिंग,* डिब्बाबंदी, *वेक्सिंग,* प्रसंस्करण व संशोधन, कागज व गत्ते के बक्से आदि बनाने में भी स्वंय समृद्धि होने से भी आमदनी बढ़ाने में सफलता मिलती है।

आत्मनिर्भरता के लिए बागवानी की पुरानी एवं परंपरागत विधियों से हटकर नई पहल करने की जरूरत है, जिससे अनुबंध खेती से त्रिपक्षीय लाभ (किसान, कुषि उत्पाद केता, वित पोषक संस्थाएं) के अवसर मिलेंगे। इसके साथ ही ग्रामीण युवाओं का शहरों की ओर पलायन भी रूकेगा तथा बागवानी फसलों के उत्पाद निर्यात को बल मिलेगा जो भारतीय अर्थव्यवस्था को मजबूत करने और देश को आत्मनिर्भर बनाने में सहायक सिद्ध होगा।

एग्री किल्निक, कस्टम हायर केंद्र, बागवानी आधारित *स्टार्टअप, एग्री इनपुट, ड्रोन* उपयोग, *डिजीज डाइग्नोस्टिक* तकनीक, *टिश्यू कल्चर* द्वारा पौधा बनाना, सघन बागवानी छत्रक प्रबंधन, बूंद–बूंद सिचाई के साथ उर्वरकों का प्रयोग, जैविक कीटनाशक उत्पादन, *स्मार्ट पैकेजिंग,* प्रसंस्करण में *ऑटोमेंशन, ई–मार्केटिंग* आदि के द्वारा फलोंत्पादन बढ़ाने, देश को सम्पन्न बनाने और युवाओं में रोजगार के नये अवसर पैदा करने की अपार संभवनाएं हैं जो देश को आत्मर्भिरता की और अग्रसर होने का मार्ग प्रशस्त करेंगे।

आत्मानिर्भरता के लिए बागवानी क्षेत्र में सरकार की पहल

वर्तमान सरकार बागवानी एवं फलोंत्पादन द्वारा आत्मनिर्भर भारत के लिए कृत संकल्प है। सरकार ने आपरेशन ग्रीन्स के माध्यम से अतिरिक्त बजट का प्रावधान किया है जिसमें टमाटर, आलू और प्याज (*टीओपी*) के अतिरिक्त, सभी फलों एवं सब्जियों को शामिल किया गया है जिससे किसानों को बेहतर मूल्य मिलेगा और वे आत्मनिर्भर हो सकेंगे। आत्मानिर्भरता को बढ़ाने तथा लोगो में विश्वास पैदा करने के लिए सरकार द्वारा एफपीओ, ऐफपीसी, जेएलसी के माध्यम से किसानों को संगठित करने और सम्मिलित प्रयास से फलोत्पादन की दिशा में सहयोग दिया जा रहा है। झारखण्ड में भी इस दिशा में प्रयास किये जा रहे हैं परन्तु उन्हें अधिक संगठित एवं पारदर्शी बनाने की जरूरत है।

अतः बागवानी और विशेष रूप से फलोत्पादन एवं उनके मूल्य संवर्धन द्वारा पूर्वी राज्यों को आत्मनिर्भर एवं स्वावलंबी बनाने की अपर संभावनाए विद्यमान हैं। अब समय आ चुका है कि इनको अंगीकृत करके सम्पूर्ण समाज के उन्नयन की दिशा में ठोस कदम उठाया जाए और जनसहभागिता के द्वारा राज्यों को आत्मनिर्भर बनाया जाए। इससे पर्यावरण भी संतुलित रहेगा और आमदनी भी सुनिश्चित की जा सकेगी।

"भाषा की समृद्धि स्वतंत्रता का बीज है।"

- लोकमान्य तिलक

फसल अवशेष प्रबंधनः मृदा उर्वराशक्ति एवं पर्यावरण के लिए आवश्यक

मनोज चौधरी, प्रिय रंजन कुमार, हिमानी प्रिया, प्रीती सिंह, दीपक कु० गुप्ता एवं विशाल नाथ

भाकृअनुप– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, गौरिया करमा, हजारीबाग, झारखण्ड– 825405

भारतीय कृषि की दीर्घकालिक स्थिरता के लिए कृषि में फसल अवशेषों का प्रबंधन महत्वपूर्ण है। अतः अवशेषों को जलाने को हतोत्साहित किया जाना चाहिए और इसका उपयोग किया जाना चाहिए। मृदा स्वास्थ्य सुधार तथा पर्यावरण प्रदुषण को कम करने के लिए किसानों को संरक्षण कृषि और लाभकारी रूप में करना जरूरी है। वे क्षेत्र जहां फसल अवशेषों का उपयोग पशुओं के चारे और अन्य उपयोगी उद्देश्य के लिए किया जाता है, वहॉ फसल अवशेषों कुछ भाग पोषक तत्व पुनः चक्रण किया जाना चाहिए। सर्वोतम साइट–विशिष्ट प्रबंधन के माध्यम से फसल अवशेष का उपयोग मिट्टी की उत्पादकता सुधार तथा मिट्टी में कार्बन भण्डारण किया जा सकता हैं।

वैश्विक तपन (ग्लोबल वार्मिंग) एक विश्वव्यापी मुद्दा है। वैश्विक तपन मानव निर्मित कारकों, विषेश रूप से कार्बन डाइऑक्साइड और मीथेन जैसे ग्रीनहाउस गैसों के संचय के कारण होती है, जो ज्यादातर तेल और कोयले जैसे जीवाश्म ईंधन के जलने से उत्पन्न होती है। लेकिन वर्तमान में, किसानों द्वारा फसल अवशेष को खेत में जला दिया जाता है, जो पर्यावरण प्रदुषण और मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट के लिए अत्यधिक जिम्मेदार है। जिसका जलवायु और मानव स्वास्थ्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दों को कम करने के लिए संसाधनों का सत्त उपयोग सबसे अच्छा तरीका है। पोषक तत्व चक्रण और बिजली उत्पदन के लिए फसल अवशेषों का उपयोग स्थिरता के लिए नया पर्यावरण अनुकूल है।

फसल अवशेष

फसल अवशेष पौधे का वह भाग होता है जो फसलों की कटाई और मडाई के बाद खेत में छोड़ दिया जाता है या चरागाह में चरने के बाद छोड़ दिया जाता है। विभिन्न फसलों की कटाई तथा मडाई के बाद बचे हुए डंठल, पुआल, भूसा, तना, जमीन पर पड़ी हुई पत्तियाँ, टहनियाँ, गेहूँ के ठूठ, गन्ने के पतवार तथा मूँगफली के छिलके आदि को फसल अवशेष कहा जाता है। विगत एक दशक से खेती में मशीनों का प्रयोग बढ़ा है। साथ ही खेती हर मजदूरों की कमी की वजह से भी यह एक आवश्यकता बन गई है। ऐसे में कटाई केलिए कंबाईन हार्वेस्टर का प्रचलन बहुत तेजी से बढ़ा है, जिसकी वजह से भारी मात्रा में फसल अवशेष खेत में पड़ा रह जाता है।

फसल अवशेष

हालांकि,पराली को हमेशा खेत में ही छोड़ दिया जाता है, तब भी जब अवशेषों को दूसरी जगह निर्यात किया जाता है। उत्पादित फसल अवशेषों की मात्रा दो मुख्य कारकों पर निर्भर करती हैः फसल की उपज और फसल का प्रकार। उदाहरण के लिए, जहां फसल की उपज कम होती है, वहां उत्पादित अवशेषों की मात्रा भी कम होती है। फसल का प्रकार भी मायने रखता है। अनाज के लिए, उत्पादित पुआल की मात्रा औसतन अनाज से मेल खाती है, लेकिन अन्य फसलों (जैसे चुकंदर) के लिए, केवल पत्ते बचे हैं। फसल अवशेष, जिसे आमतौर पर "कचरा" या कृषि अपशिष्ट सामग्री के रूप में माना जाता है, लेकिन जब सही ढ़ग से प्रबंधित किया जाता है तो मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ की गतिशीलता और पोषक चक्र में सुधार हो सकता है, जिससे फसल के विकास के लिए एक अनुकूल वातावरण तैयार होता है। पौषक तत्वों के चक्रण के अलावा, अवशेष प्रतिधारण के कारण मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार।

तालिका–2 अवशेष जालाने से पोषक तत्वों का नुकासान

फसल अवशेष	नत्रजन का नुकासान मि.टन/वर्ष	फास्फोरस का नुकसान मि.टन/वर्ष	पोटाश का नुकसान मि.टन/वर्ष	कुल मि.टन/वर्ष
धान	0.236	0.009	0.200	0.45
गेहूँ	0.079	0.004	0.061	0.14
गन्ना	0.079	0.001	0.033	0.84
कुल	0.394	0.14	0.295	0.143

ग्रीन हाउस गैंस का उत्सर्जन

कृषि अवशेषों को जलाना, रासायनिक और विकिरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण गैसों और एरोसोल जैसे मिथेन (CH4), कार्बन डाइऑक्साइड (CO2), कार्बन मोनोऑक्साइड (CO), नाइट्रस ऑक्साइड (N2O), और अन्य हाइड्रोकार्बन के महत्वपुर्ण स्त्रोतों में वृद्धि होता है जो वायुमंडलीय संरचना को प्रभावित करते हैं। जलाए गए प्रत्येक टन फसल अवशेष के लिए 2.3 किग्रा मिथेन गैस उत्सर्जित होता है। भारत के गंगा मैदानी इलाकों में संघन चावल–गेहूं फसल प्रणाला अपनाते है, वहॉ फसल के अवशेष, विशेष रूप से चावल के भूसे का उपयोग पशु आहार के रूप में नहीं किया जाता है और इसे जलाकर निपटाया जाता है। यह पुआल निपटाने की एक लागत प्रभावी विधि है और पुआल में रहने वाले कीट और रोग आबादी को कम करने में मदद करती है, लेकिन पुआल निपटाने की ये विधि प्रदूषण का कारण बनती है, जिससे वैश्विक तपन में वृद्धि एवं मानव स्वास्थ्य के प्रति चिंताएं करना जरूरी हो जाता है।

मृदा में सूक्ष्मजीवों की कमी

फसल अवशेष मिट्टी के सूक्ष्मजीवों की वृद्धि और गतिविधियों के लिए भोजन प्रदान करते हैं। फसल अवशेषों को जलाने से मिट्टी में गर्मी बढ़ जाती है जिसके परिणामस्वरूप सूक्ष्मजीवों एवं जमीन की ऊपरी सतह पर रहने वाले मित्र कीट व केंचुआ आदि कम हो जाता है। अवशेषों को हटाने या जलाने की तुलना में अवशेषों को खेतों में शामिल करने से अधिक सुक्ष्मजीवों की गतिविधियॉ बढ़ जाती है। कई शोध निष्कर्ष बताते हैं कि लंबे समय तक जलने से मिट्टी में जीवों की आबादी स्थायी रूप से कम हो जाता है,

मृदा संरचना पर प्रभाव

मृदा की संरचना में क्षति होने से जब पोषक तत्वों का समुचित मात्रा में स्थानान्तरण नहीं हो पाता तथा मृदा में पानी धारण की क्षमता कम हो जाने से खेतों में अत्यधिक पानी जमाव की समस्या उतपन्न हो जाता है।

तिलहन	0.80	0.21	0.93
मुँगफली	1.60	0.23	1.37
गन्ना	0.40	0.18	1.28
आलु कंद	0.52	0.21	1.06
कुल	8.71	2.48	14.67

स्त्रोतः टंडन,2003

फसल अवशेषों के पुनः चक्रण और संभावित उपयोग

पोषक तत्व पुनः चक्रण (या पारिस्थिकी पुनर्चक्रण) जैविक और अकार्बनिक पदार्थें की विनियम है जो जीवित पदार्थ के उत्पादन में वापस आते हैं। इस प्रक्रिया को खाद्य चक्र पथों द्वारा नियंत्रित किया जाता है जो पदार्थ को खनिज पोषक तत्वों में विघटित करते हैं। पारिस्थितिक तंत्र के भीतर पोषक चक्र होते है। अपघटन की प्रक्रिया के दौरान पारिथितिकी में पुनर्चक्रण को काफी हद तक नियंत्रित किया जाता

है। फसल अवशेषों के पुनः चक्रण के अनेक तरीके प्रचलित हैं जिनमें से कुछ विधियों को वर्णित किया गया है।

- **ढेर प्रणाली:** इस विधि में पोषक तत्वों के वितरण को बराबर करने के लिए प्रत्येक मौसम में एक खेत के क्रमिक चतुर्थांश में पुआल को ढेर करने की सिफारिश की जाती है। पुआल धीरे–धीरे, मोटे तौर पर एरोबिक रूप से विघटित होता है, और आसानी से फैलाया जा सकता है और अगले सीजन की शुरूआत में मिट्टी में मिला दिया जाता है।
- **फसल अवशेषों को मिट्टी में मिलाना:** फसल के अवशेषों को मिट्टी मिलाना और उन्हें सड़ने देना काफी प्रचलित तरीका है। इस विधि से भूसे के लगभग सभी पोषक तत्वों को मिट्टी में वापस किया जा सकता है। उत्तरी अमेरिका और यूरोप सहित भारत वर्ष में फसल अवशेष जलाने के प्रतिकूल पर्यावरणीय प्रभावों पर चिंता के कारण अनाज के भूसे को मिट्टी में मिलाना विकल्प के रूप में अपनाया जा रहा है। एक बेहतर भारत के अनेक राज्यों में अवशेष जलाने को न केवल प्रतिवन्धित किया है अपितु उसके मिट्टी में मिलाने और जल्दी सड़ाने कें लिए शुक्ष्म जीवों का प्रोत्साहन किया है।

अवशेषों को मिट्टी में मिलाना

- **पलवार खेती के रूप में उपयोग :** उष्ण कटिबंधीय जलवायु क्षेत्रों की ऊपरी मिट्टी में मिट्टी–विशिष्ट सरंक्षण जुताई प्रणाली के विकास के लिए फसल अवशेषों का उपयोग पलवार के रूप में करना महत्वपूर्ण है। अवशेष सतह पर धीरे–धीरे विघटित होते हैं, ऊपरी 5–15 सेमी मिट्टी में कार्बनिक कार्बन और कुल नाइट्रोजन को बढ़ाते तथा सतह की मिट्टी को कटाव से बचाते हैं।
- **खाद के रूप में उपयोग :** भारत में विभिन्न स्त्रोतों से एकत्र किए गए रॉक फॉस्फेट के साथ चावल के भूसे को मिलाकर खाद तैयार की गई है। जिसके माध्यम से मिट्टी में फास्फोरस गतिशीलता को एवं उसके अंशों को बढ़ाने में मदद मिली है।
- **पूसा डीकंपोजर टेक्नोलॉजी :** देश भर में फसल अवशेष प्रबंधन के लिए आईसीएआर– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (आईएआरआइ), नई दिल्ली द्वारा नए कम लागत वाले कैप्सूल यानी पूसा डीकंपोजर टेक्नोलॉजी विकसित किया गया। कम लागत वाले कैप्सूल के बारे में जागरूकता के लिए सरकार द्वारा उठाए गए कदम जो धान की पराली को जैव–खाद में बदल सकते हैं सरकार ने 2020–21 के दौरान 20 राज्यों के किसानों को कैप्सूल किट प्रदान की। आईएआरआइ ने पूसा डीकंपोजर के बड़े पैमाने पर गुणन और विपणन के लिए 12 कंपनियों को प्रौद्योगिकी का लाइसेंस दिया है।

मृदा स्वास्थ्य पर फसल अवशेषों का प्रभाव

फसल अवशेषों का मृदा के स्वास्थ्य पर अनेक प्रभाव देखे गये हैं जिनमें से कुछ स्पष्ट प्रभावों को दिया गया हैं।

- मिट्टी में कार्बनिक कार्बन और पोषक तत्वों में सुधार
- मिट्टी के पीएच में तेजी से बदलाव के खिलाफ प्रतिरोधक के रूप में कार्य करता है।
- लवणीय और क्षारीय मिट्टी का सुधार और प्रबंधन।
- मिट्टी में जैविक पदार्थ पीएच और ईएसपी को शामिल करना और फसल की पैदावार में सुधार करना।
- पौधों के पोषक तत्वो के लिए एक जलाशय के रूप में कार्य करता है और पौधों के विकास के लिए आवश्यक तत्वों के लीचिंग को रोकता है।

- गोबर खाद के प्रयोग के साथ पुआल का समावेश, मिट्टी के थोक घनत्व को कम करता है और मिट्टी की सरंध्रता को बढ़ाता है।
- जीवाणुओं की वृद्धि और गतिविधियों के लिए ऊर्जा प्रदान करता है।
- मिट्टी और जल संरक्षण में सुधार और मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखना और फसल की पैदावार बढ़ाना
- सर्दियों में मिट्टी का तापमान बढ़ाता और गर्मी के मौसम में इसे कम करता है।

"हिंदी हमारे राष्ट्र की अभिव्यक्ति का सरलतम स्त्रोत है।"

- सुमित्रानंदन पंत

वर्मीकम्पोस्टिंग द्वारा कृषि अपशिष्ट का पुनर्चक्रणः प्राकृतिक खेती का महत्वपूर्ण घटक

दीपक कुमार गुप्ता[1]', पंकज कुमार सिन्हा[1], सुरेनधर पी[1], शिल्पी केरकेट्टा[1], प्रीती सिंह[1], कृष्ण प्रकाश[1], मनोज चौधरी[1], चंदन कुमार गुप्ता[2], अशोक कुमार[1] एवं विशाल नाथ[1]

[1]भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, गौरिया करमा, हजारीबाग, झारखंड 825405

[2]कृषि मौसम विज्ञान और पर्यावरण विज्ञान विभाग, बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, कांके, रांची, झारखंड 834006

वर्मी कम्पोस्टिंग कार्बनिक अपशिष्ट पदार्थों के पुनर्चक्रण का एक कुशल तरीका है। इस तकनीक द्वारा, पारंपरिक तरीकों से तैयार खाद की तुलना मे अत्यधिक पोषक तत्व वाले खाद मिलता है तथा अपेक्षाकृत कम समय में खाद बन कर तैयार हो जाता है। कई अध्ययनों ने पता चलता है कि वर्मिकम्पोस्ट के उपयोग से फसल वृद्धि और उपज के साथ–साथ मिट्टी के स्वास्थ्य पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसलिए, अपशिष्ट कृषि अवशेषों के कुशल उपयोग के लिए बड़े पैमाने पर वर्मीकम्पोस्टिंग को अपनाया जाना चाहिए। यह न केवल जैविक कचरे का पुनर्चक्रण कर सकता है बल्कि प्राकृतिक खेती के तहत क्षेत्र को बढ़ाने के साथ–साथ किसानों की आय बढ़ाने में भी मददगार साबित हो सकता है।

समय के साथ फसल की खेती की प्रथा में बदलाव देखा जा रहा है। कृत्रिम रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशक के आगमन से पहले फसल की खेती पूरी तरह से प्राकृतिक निवेश एवं संसाधन पर निर्भर थी। हालांकि, बढ़ती आबादी की खाद्य मांग को पूरा करने के लिए 1960 के दशक की हरित क्रांति आवश्यक थी। हरित क्रांति से खाद्यान्न उपज में लगभग चार गुना वृद्धि हुई। यह मुख्य रूप से उच्च उपज देने वाली किस्म, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक और बेहतर सिंचाई के बुनियादी ढांचे के कारण हासिल किया गया था। हालांकि, अंधाधुंध उर्वरक और कीटनाशक के अधिक उपयोग से मानव, मिट्टी और जैव विविधता के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ा है। उर्वरकों के असंतुलित उपयोग के कारण, कई राज्यों में मिट्टी का स्वास्थ्य खराब हो गया है और मिट्टी में कई आवश्यक पोषक तत्वों की कमी पाई गई है। रासायनिक कीटनाशक एवं खरपतवार नाशक दवा के उपयोग से मनुष्य, जानवर एवं जैविक विविधता पर भी नकारात्मक प्रभाव देखा जा रहा है। इसलिए, 21वीं सदी की शुरुआत में, मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण की संरक्षण के लिए प्राचीन कृषि प्रणाली जो प्राकृतिक निवेश एवं संसाधन पर निर्भर थी को आज विश्वपटल पर प्राकृतिक खेती के नाम से पुनः प्रारंभ किया जा रहा है। इस तरह प्राकृतिक खेती की लोकप्रियता फिर से बढ़ रही है। प्राकृतिक खेती पूरी तरह से उर्वरक और कीटनाशक जैसे कृत्रिम आदानों के उपयोग से बचती है और इस प्रकार मुख्य रूप से जैविक खाद और कीट और रोग नियंत्रण जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करती है जो पारिस्थितिक सिद्धांत या वानस्पतिक उत्पाद पर आधारित होती है। प्राकृतिक खेती के तहत, पौधों के पोषक तत्वों की आपूर्ति और मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए, जैविक खाद का मिट्टी में समावेशन अति आवश्यक है।

अधिकांश किसान पशु आधारित फार्म यार्ड खाद या गोबर खाद का उपयोग करते हैं। पारंपरिक तरीका से बनाए गए गोबर खाद मे पोषक तत्व कम पाए जाते जिसके कारण एक इकाई भूमि मे डालने के लिए इनकी अत्याधिक मात्रा में आवश्यकता होती हैं वहीं दूसरी तरफ गाय के गोबर की खाद की उपलब्धता भी सीमित है। अतः अच्छी गुणवत्ता एवं पर्याप्त मात्रा में जैविक खाद की उपलब्धता प्राकृतिक खेती के लिए एक बड़ी चुनौती है। जैविक खाद, केवल गोबर से ही नहीं बल्कि, कृषि, घरेलू , णिज्यिक और उद्योग से उत्पन्न कार्बनिक या जैविक ठोस अपशिष्ट से भी तैयार किया जा सकता है। ये कार्बनिक अपशिष्ट, नियमित रूप से खेत के साथ–साथ घरेलू स्तर पर भी उत्पन्न होते हैं। हालांकि, इनमें से अधिकांश कार्बनिक अपशिष्ट का उचित प्रबंधन के अभाव में सदुपयोग नहीं हो पाता है । इनमें से अधिकांश कार्बनिक अवशेष को जला कर बर्बाद कर दिया जाता हैं। धान की पुवाल में लिग्निन की मात्रा अधिक होने के कारण इसे पसंदीदा पशुधन चारा नहीं माना जाता है, और इसलिए पंजाब जैसे कई राज्यों में कंबाइन द्वारा फसल की कटाई के बाद धान के पुआल को जला दिया जाता है, जो की आसपास के

राज्यों जैसे दिल्ली में वायु प्रदूषण का एक महत्वपूर्ण कारण है। इन फसल अवशेषों में मूल्यवान पादप पोषक तत्व पाए जाते है और जैविक कचरे का वैज्ञानिक तरीके से प्रबंधन नहीं होने के कारण, ये पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। उचित वैज्ञानिक प्रबंधन के माध्यम से इन फसल अवशेषों को जैविक खाद के रूप में उपयोग कर जैविक कृषि को बल प्रदान किया जा सकता है। कृषि से उत्पादित अधिकांश जैविक कचरे का पुनर्चक्रण मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखने और कृत्रिम उर्वरक के विकल्प के लिए आवश्यक है। इससे प्राकृतिक खेती के लिए जैविक इनपुट की उपलब्धता में वृद्धि होगी और साथ ही कीमती संसाधनों की बर्बादी भी रुकेगी। आजकल इन अवशेषों से खाद बनाने की कई कुशल तकनीक विकसित की गई हैं जिनके उपयोग से फसल अवशेषों को खाद रूपी धन में बदल जा सकता है। वर्मीकम्पोस्टिंग जैविक कचरे की विभिन्न कम्पोस्टिंग तकनीकों में, से वर्मीकम्पोस्टिंग, कार्बनिक अवशेषों को "पोषक तत्वों से भरपूर खाद" में बदलने का एक बहुत ही कुशल तरीका है। वर्मीकम्पोस्टिंग एक ऐसी प्रक्रिया है जो केंचुओं का उपयोग करके जैविक अवशेषों को वर्मीकम्पोस्ट नामक एक द्वितीयक उत्पाद में बदल देती है, जिसका उपयोग फसल उत्पादन के लिए उर्वरक के रूप में किया जा सकता है।

वर्मीकम्पोस्ट को केंचुआ के उपयोग से बनाया जाता है इसलिए इसे केंचुआ खाद भी कहा जाता है। वर्मीकम्पोस्टिंग एक कोष्णप्रिय (मेसोफिलिक) प्रक्रिया है जिसमें केंचुए के साथ–साथ अन्य सूक्ष्मजीव जैसे बैक्टीरिया, शैवाल और कवक एक साथ मिलकर कार्बनिक पदार्थों को वर्मीकम्पोस्ट में परिवर्तित करते हैं। हालांकि, केंचुआ मुख्य भूमिका अदा करता है। केंचुआ , लगभग सभी तरह के कार्बनिक पदार्थ को खाता है। केंचुआ, एक दिन मे लगभग अपने शरीर के वजन से दो से पांच गुना अधिक कार्बनिक पदार्थ को निगलते हैं और इसे भौतिक एवं रासायनिक प्रक्रिया द्वारा बारीक कणों में पीसते हैं, जिससे निगले गए कार्बनिक पदार्थ के सतह का क्षेत्रफल बढ़ जाता है और तेजी से अपघटन होता है। केंचुआ, ग्रहण किए गए कार्बनिक पदार्थ का उपयोग शरीर के विकास के लीए अपेक्षाकृत बहुत कम मात्रा मे करते हैं (10–20 प्रतिशत) और बचे हुए अपचित पदार्थ को वर्मीकास्ट (केंचुआ का मलमूत्र) के रूप में उत्सर्जित कर देते हैं। इस तरह केंचुआ खाद मुख्य रूप से वर्मिकास्ट, जीवित केंचुआ और उनके कोकून तथा सूक्ष्मजीव द्वारा विघटित कार्बनिक पदार्थों का मिश्रण है (चित्र 1)। वर्मीकम्पोस्ट 4 मिली मीटर से काम आकार के गहरे भूरे या काले रंग के दाने जैसा दिखता है। इसमे लगभग 15–15 प्रतिशत नमी, 18–22 प्रतिशत कार्बन, 1–1.5 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.8–1 प्रतिशत फॉसफोरस, 0.8–1 प्रतिशत पोटाश एवं सूक्ष्म पोषक तत्व होते हैं।

चित्र 1: पूर्ण रूप से तैयार केंचुआ खाद

वर्मीकम्पोस्टिंग से लाभ

वर्मीकम्पोस्ट अपनी गुणवत्ता के कारण अन्य प्रकार की कम्पोस्ट से बेहतर मानी जाती है। वर्मीकास्ट में मौजूद पोषक तत्व पौधों द्वारा ग्रहण के लिए पानी में आसानी से घुलनशील होते हैं। वर्मीकास्ट नाइट्रोजन, फॉसफोरस, पोटासियम, सूक्ष्म पोषक तत्वों, लाभकारी मृदा जीवाणुओं नाइट्रोजन फिक्सिंग और फॉस्फेट घुलनशील बैक्टीरिया और एक्टिनोमाइसेट्,विटामिन, एंजाइम, एंटीबायोटिक्स, पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने वाले पदार्थों (ग्रोथ हार्मोन) से समृद्ध होता है। वर्मीकम्पोस्ट मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और

जैविक गुणों में सुधार करता है और साथ ही जैविक संवर्धन में योगदान देता है। वर्मीकास्ट वाली मिट्टी में बिना केंचुआ वाली मिट्टी की तुलना में लगभग 100 गुना अधिक लाभकारी जीवाणु होते हैं। भौतिक–रासायनिक विश्लेषण से पता चलता है कि वर्मीकम्पोस्टिंग कार्बनिक अपशिस्ट मे उपस्थित कुल कार्बनिक कार्बन और कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात को कम करता है तथा अन्य जैविक खाद और कृषि अपशिष्ट की तुलना में नाइट्रोजन–फास्फोरस–पोटेशियम (एन.पी.के.) की मात्रा को बढ़ाता है। वर्मीकास्ट के प्रभावों पर किए गए वैज्ञानिक शोध में पाया गया है कि नाइट्रोजन की मात्रा में 30–50: की वृद्धि, पोटेशियम और फॉस्फेट की मात्रा में 100 प्रतिशत की वृद्धि, जड़ की लंबाई, जड़ की संख्या और अंकुर की लंबाई में वृद्धि, और ककड़ी और टमाटर में 40–60 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। उपज, स्वाद और श्वजीवन में भी वृद्धि की सूचना मिली है, हालांकि इन निष्कर्षों को आसानी से निर्धारित नहीं किया गया है। वर्मिकोमपोस्ट, दीर्घकालिक मृदा कंडीशनर के रूप में कार्य करते हैंऔर मिट्टी के स्वास्थ्य, मिट्टी की जल धारण क्षमता और फसल की पैदावार में काफी सुधार करते हैं। इन सभी कारकों से अंततः फसल वृद्धि और उपज में सुधार होता है, और मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुण बेहतर हो जाते है। वर्मीकम्पोस्टिंग पर्यावरण हितैषी है और कृषि अपशिष्ट के प्रबंधन के लिए एक आर्थिक तकनीक है। इसतरह, वर्मी कम्पोस्टिंग जैविक कचरे की बढ़ती मात्रा के पुनर्चक्रण और उर्वरकों के उपयोग को कम करने के लिए एक संभावित समाधान है। आज वर्मीकम्पोस्ट प्राकृतिक खेती प्रणाली का एक महत्वपूर्ण घटक है, क्योंकि इसे तैयार करना आसान है, इसमें उत्कृष्ट गुण हैं और यह पौधों के लिए हानिरहित है। इसलिए यह रासायनिक उर्वरकों का एक स्थायी विकल्प हो सकता है।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए प्रयुक्त होने वाले केंचुआ का प्रकार

किसान के मित्र के रूप में जाने जानेवाले केंचुओं की दुनिया में लगभग 3000 प्रजातियां हैं जो उष्णकटिबंधीय से समशीतोष्ण क्षेत्र तक पाई जाती हैं। भारत में मौजूद केंचुओं की लगभग 418 प्रजातियां पाई जाती हैं । परंतु सभी प्रजातिओ का उपयोग वर्मिकोमपोस्टिंग मे नहीं किया जा सकता है। केंचुओं को तीन पारिस्थितिक श्रेणियां मे बाटा गया है एपीजेइक, एंडोजेइक और एनेक्सिक्स। इन सभी श्रेणियों मे, आमतौर पर एपीजेइक श्रेणि के प्रजाति का उपयोग वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए किया जाता है। इस श्रेणि के प्रजाति को ह्यूमस फॉर्मर्स भी कहा जाता है। यह समूह मिट्टी के सतह पर रहता है और सतह पर उपस्थित ताजे जैविक पदार्थ को खाता है। उच्च जैविक अंतर्ग्रहण और प्रजनन दर की क्षमता के कारण, इस समूह मे, केंचुआ ईसेनिया फोएटिडा एवम यूड्रिलस यूजेनिया वर्मीकम्पोस्टिंग में उपयोग की जाने वाली सबसे आम प्रजातियों में से है (चित्र 2)। ये प्रजातिया लगभग सभि तरह के जैविक पदार्थ को वेर्मिकोम्पोस्ट मे बदल सकते है साथ ही साथ 0–40 डिग्री सेल्सियस तापमान को सहन भी कर सकते है । हालांकि, इष्टतम तापमान 20–30 डिग्री सेल्सियस के बीच रहता है।

चित्र –2

वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए उपयुक्त जैविक अपशिस्ट या फीड स्टॉक

केंचुआ लगभग सभी प्रकार के अपघटक जैविक कचरे को वर्मीकम्पोस्ट में बदल सकता है। वैसे कार्बनिक पदार्थ जो जीव रासायनिक क्रियाओं द्वारा साधारण रासायनिक पदार्थों में विघटित हो जाते है उन्हे अपघटक जैविक पदार्थ कहते है। इसलिए, फसल उत्पादन और पशुपालन से उत्पन्न सभी जैविक

अपशिष्ट या उप–उत्पादों का उपयोग वर्मीकॉनपोस्टिंग के लिए किया जा सकता है। यह अनुमान लगाया गया है कि दस प्रमुख फसलें (चावल, गेहूँ, ज्वार, बाजरा, जौ, मडुआ, बाजरा, गन्ना, आलू, कंद और दालें) लगभग 679 मिलियन टन फसल अवशेष उत्पन्न करते हैं, जिसमें लगभग 226 मिलियन टन अवशेष पुनर्चक्रण के लीए उपलब्ध हो सकते है। सभी जानवरों के मलमूत्र की संभावित उपलब्धता लगभग 369 मिलियन टन है, जिसमें से 119 मिलियन टन वास्तव में पुनर्चक्रण के लीए उपलब्ध हो सकते है। खेत की फसलों के अलावा, बागवानी और वृक्षारोपण क्षेत्रों से अनुमानित जैविक उप–उत्पादोंध्अपशिस्ट का वार्षिक उत्पादन लगभग 263.4 मिलियन टन है। जिसमें से 134 मिलियन टन पुनर्चक्रण के लिए उपलब्ध माना जाता है। यह भी अनुमान है कि खाद्यान्न उत्पादन में प्रत्येक मिलियन टन की वृद्धि से 1.2–1.5 मिलियन फसल अवशेष उत्पन्न होंगे और मवेशियों की संख्या में प्रत्येक मिलियन की वृद्धि से 1.2 मिलियन टन अतिरिक्त सूखा गोबर प्रतिवर्ष मिलेगा। यह अनुमान लगाया गया है कि भारत मे पुनर्चक्रण के लीए उपलब्ध सभी जैविक अपशिष्टों का यदि वैज्ञानिक तरीके से उचित प्रबंधन किया जाए, तो यह 10 मिलियन पौधों के पोषक तत्वों का स्रोत हो सकता है और इससे मृदा स्वास्थ्य और फसल उत्पादकता में भी सुधार होगा। कृषि कचरे को वर्मीकम्पोस्ट में बदलने के लिए कई शोध चल रहे हैं। आज विकसित वैज्ञानिक तकनीकों के माध्यम से गोबर, फसल के भूसे, खरपतवार, गाजर घास, पेड़ के पत्तों आदि से आसानी से वर्मीकम्पोस्ट का उत्पादन किया जा सकता है।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने का तकनीक

स्थान का चुनाव :– ऐसी स्थल का चयन करें जो किसी आर्थिक उपयोग मे नहीं लिया जाता हो, जल का जमाव नहीं होता हो, जहां छाया, उच्च आर्द्रता और ठंडक हो और जल का स्रोत नजदीक हो। परित्यक्त मवेशी शेड, या पोल्ट्री शेड या अप्रयुक्त भवनों का भी उपयोग किया जा सकता है। यदि इसे खुले क्षेत्र में उत्पादित करना है तो कृत्रिम छायांकन प्रदान किया जाना चाहिए।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने की विधि :– वर्मी कम्पोस्ट बनाने की कई विधियाँ हैं जैसे गड्ढा या पीट विधि (जमीन के नीचे आयताकार गड्ढा बना कर), ढेर या हिप बिधी (जमीन के ऊपर प्लास्टिक पर ढेर बना कर), बेड या टैंक विधि (वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए चयनित स्थान के ऊपर ईंट या लकड़ी से उपयुक्त आयाम का आयताकार या गोलाकार बेडध्टैंक बनाकर), राइनो वर्मी बेड विधि (राइनो वर्मीकम्पोस्ट बेड पॉलीइथाइलीन नेट विंडो से बने होते हैं, जिसमें बेड के नीचे एक जालीदार आउटलेट होता है) और प्लास्टिक ड्रम या बिन विधि (चित्र 3)। ज्यादातर वर्मिकोमपोस्ट या तो गड्ढे या ढेर विधि में तैयार किया जाता है। ढेर या गड्ढे का आयाम 10 • 3–4 • 1.5–2 फीट (लंबाई, चौड़ाई एवं गहराई) होना चाहिए । लंबाई और चौड़ाई को आवश्यकता अनुसार बढ़ाया या घटाया जा सकता है परंतु गहराई को नहीं क्योंकि केंचुए की गतिविधि केवल 2 फीट गहराई तक ही सीमित होती है।

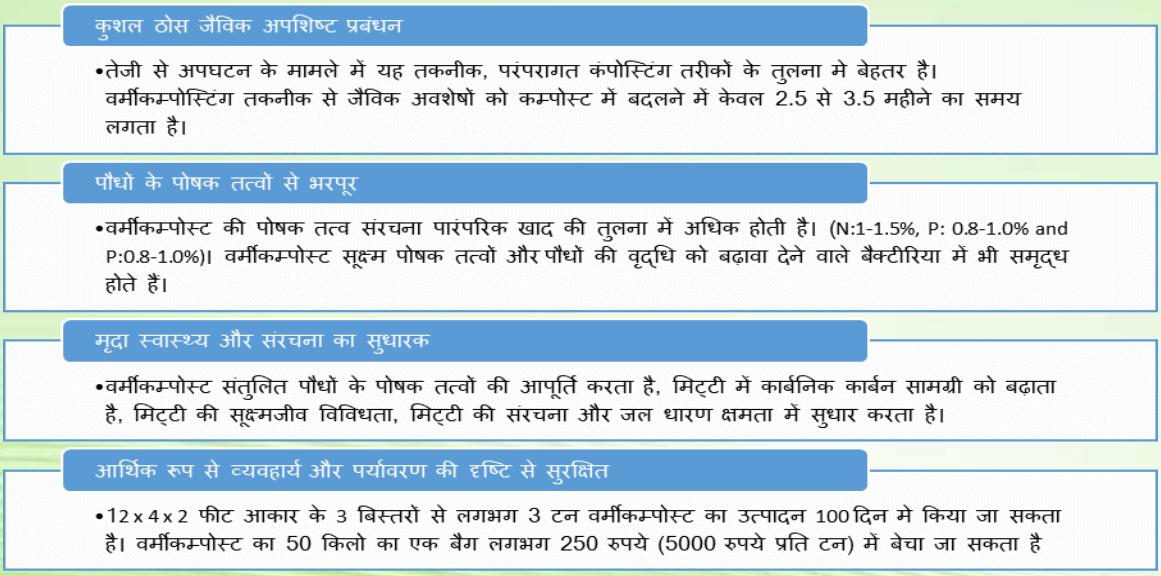

चित्र – 3 : वर्मीकम्पोस्ट बनाने का तरीका

वर्मी कम्पोस्ट बनाने की प्रक्रिया : वर्मी कम्पोस्टिंग का पहला चरण कार्बनिक अवशेषों का संग्रह कर उन्हें छोटे टुकड़ों में काटना होता है। केंचुआ डालने से पहले कटी हुई कार्बनिक अवशेषों को आंशिक रूप से विघटित होना जरूरी होता है। इसके लिए सामग्री को पानी और गाय के गोबर के घोल में 20 से 25 दिन तक या फिर नरम और ठंडा होने तक भिगो कर रखना चाहिए। आंशिक विघटन होने के बाद, केंचुआ प्रजातियां ईसेनिया फोएटिडा या यूड्रिलस यूजेनिया को विघटित पदार्थ के ढेर जिसे वर्मी बेड भी कहते है में 1 किलो केंचुआ प्रति 2 वर्ग मीटर क्षेत्र या प्रति किलो कार्बनिक अवशेष की दर से डाला जाता है । केंचुआ डालने के तुरंत बाद, पानी का छिड़काव करना चाहिए। खाद बानाने की पूरी अवधि के दौरान वर्मी बेड मे नमी की मात्रा 60– 70% पर बना रहना आवश्यक होता है। उपयुक्त नमी व्यवस्था और तापमान की स्थिति के रख–रखाव की सुविधा के लिए जूट बैग को वर्मी बेड की सतह पर समान रूप से फैल जाना देना चाहिए। समय पर वर्मीबेड का टर्निंग और स्टेकिंग द्वारा उचित नमी, वायु विनिमय एवं तापमान को बनाए रखना चाहिए। शुष्क परिस्थितियां केंचुओं को मार देती हैं और जलभराव उन्हें दूर भगा देता है। इसलिए, गर्मियों में रोजाना और बरसात और सर्दी के मौसम में हर तीसरे दिन वर्मी बेड मे पानी देना चाहिए। पानी के ठहराव से बचने के लिए वर्मीबेड के चारों ओर एक जल निकासी चौनल बनाना आवश्यक होता है। चींटियों, छिपकलियों, सांपों, मेंढकों आदि जैसे प्राकृतिक शत्रुओं से केंचुओं की रक्षा आवश्यक है। निवारक उपायों में कार्बनिक अवशेषों को भरने से पहले, पीट या बेड के सतह को 4% नीम आधारित कीटनाशक से उपचार एवं केंचुओं को चींटियों से बचाने के लिए बेड के चारों ओर पतला पानी का नाला बनाना शामिल है। वर्मिकम्पोस्ट के तैयार होने के बाद, कम्पोस्ट को निकालने के एक सप्ताह पहले वर्मी बेड मे पानी देना बंद कर देना चाहिए ताकि केंचुओं को एक जगह इकट्ठा कर दुबारा उपयोग मे लाया जा सके।

"हिन्दी के द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।"

- महर्षि दयानन्द

खाद्य एवं जलवायु सुरक्षा में कृषि वानिकी की भूमिका

सुशील कुमार, अशोक यादव, सुकुमार तरिया, बद्रे आलम, प्रियंका सिंह,
आर. पी. दिवेदी एवं ए. अरूणाचलम
भा.कृ.अनु.प.– केन्द्रीय कृषि वानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी, उ.प्र.

देश के खाद्य एवं पर्यावरण सुरक्षा में कृषि वानिकी का महत्वपूर्ण योगदान है। वानिकी के साथ कृषि अनेक अवयवों के संतुलित समावेश से अनुपजाऊ तथा कम उपजाऊ जमीन का बेहतर उपयोग किया जा सकता है। किसी स्थान की जरूरत एवं किसानों के संसाधनों को दृष्टिगत रखते हुए अनेक मॉडल विकसित किये गये हैं जिसे अपना कर किसान अच्छी आमदनी प्राप्त कर सकते हैं।

कृषि वानिकी, जो कि वृक्ष आधारित खेती, एक ऐसी पद्धति है जिसमें परम्परागत कृषि फसलों के साथ वृक्ष उगाये जाते हैं। कृषिवानिकी प्रणाली किसानों के लिये लाभप्रद होने के साथ साथ पर्यावरण सन्तुलन बनाये रखने, मिट्टी का कटाव एवं बहाव रोकने किसानों को एक अच्छा और टिकाऊ वैकल्पिक आय का स्त्रोत प्रदान करने का भी काम करता है। कृषिवानिकी से समाजिक, आर्थिक उएंवम पर्यावरणीय लाभों के साथ कृषि उत्पादों में विविधता को बढ़ाया जा सकता है। भारत जैसे देश में जहाँ, 85–86 प्रतिशत किसान छोटी जोत वाले है, जहॉ कृषिवानिकी प्रणाली की भुमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। क्योंकि यह उनके खाद्य आपूर्ति, आय एवं स्वास्थ को बढ़ा सकती है। इसके साथ–साथ कृषिवानिकी प्रणाली किसानों को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय लाभों की एक विस्तृत श्रखंला भी प्रदान कर सकती है। घटको एंवम सरंचना के आधार पर कृषिवानिकी प्रणालियों को मुख्यतः तीन भाग में विभाजित किया गया है जो कि निम्नवत है।

एग्री सिल्वीकल्चर : इस कृषिवानिकी प्रणाली में कृषि फसलों के साथ में लकड़ी वाले पेड़ों को इस उद्रदेश्य के साथ उगाया जाता है कि एक ही खेत से खाद्यान फसलों के साथ लकड़ी, चारा, फल और ईधन को आवश्यकतानुसार पूर्ण किया जा सके (चित्र 1&2)। इस प्रणाली में कृषि फसलों को सिचिंत दशा में दो साल तक एवं असिचिंत दशा में चार साल तक लाभप्रद एवं प्रभावी रूप से उगाया जा सकता जबकि चारा एवं छाया को सहन करने वाली तथा उथेली जड़ वाली फसलों को चार साल के बाद भी सफलतापूवर्क उगाया जा सकता है। एकल फसल की तुलना में इस प्रणाली के अर्न्तगत फसलों एवं पेड़ों का प्रदर्शन बेहतर आंका गया है

चित्र –1 : बेर+गेंहूँ आधारित हार्टी–एग्री प्रद्धति

चित्र–2: टीक+ड्रेगनफ्रूट आधारित सिल्वी–हार्टी पद्धति

सिल्वी पाश्चर : चरागाह के साथ काष्ठीय पेड़ों के उगाने/उत्पादन को सिल्वीपाश्चर कहा जाता है। इस प्रणाली के अर्न्तगत उगाये गये पेड़ों का उपयोग मुख्यतः चारा, लकड़ी, ईधन एवं फल उत्पादन के लिये किया जाता है। इस प्रणाली को अपनाने से मुख्यतः मिट्टी में सुधार एवं इसकी अवरा शक्ति को बढ़ाया जा सकता है।

एग्री सिल्वीपाश्चर : कृषि फसलों एवं चरागाह के साथ बहुवर्षीय पेड़ उगाने को एग्रीसिल्वीपाश्चर कहा जाता है। इस प्रणाली के तहत खाद्यान, चारा एवं लकड़ी की अवाश्यकताओं को एक ही खेत से पूरा किया जा सकता है। इस प्रणाली में उत्पादकता प्रति इकाई अन्य प्रणालियों की तुलना में ज्यादा प्राप्त होती है। इस प्रणाली को अपनाकर प्राकृतिक संसाधानों का सही रूप से सदुपयोग करके आय एवमं उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है। यह पद्धति का टिकाऊ खेती का अच्छा उदाहरण है। कृषिवानिकी अपनाकर उत्पादकता बढ़ाने के साथ–साथ निम्नलिखित पहलुओं को भी साकारात्मक बल दिया जा सकता है, जो कि आज के परिवेश में कृषि को टिकाऊ एवमं लाभदायक बनाने के लिए जरूरी है।

- मृदा उर्वरता में सुधार।
- मृदा लवणता नियन्त्रण ।
- मृदा अपरदन एवं अपवाह की रोकथाम।
- मृदा एवं माइक्रोक्लाईमेट का स्थिरकरण।
- रसायनों का कम से कम उपयोग।
- विविध उत्पादों का उत्पादन।
- वनों को होने वाले नुकसान की रोकथाम।
- जलवायु परिर्वतन शमन।

आज के समय में जब जलवायु परिर्वतन के कारण, समूचे विश्व में खाद्यान्न उत्पादन एवं कृषि कियायें पूरी तरह से प्रभावित हो रही है। बढ़ती हुई आबादी के लिये खाद्यान्न उपलब्धता सुनिश्ति करना हर देश की प्राथमिकता हो रही है। इसी लिए खाद्य सुरक्षा के साथ– साथ जलवायु सुरक्षा पर भी जोर दिया जा रहा है। खाद्य एवं जलवायु सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिये वैज्ञानिकों, नीति निर्धारकों एवं सरकारों द्वारा विभिन्न पहलुओं पर काम किया जा रहा है। कृषिवानिकी उनमें से एक पहलू है, जिसको अपनाकर खाद्य एवं जलवायु सुरक्षा को काफी हद तक सुनिश्चित किया जा सकता है।

खाद्यय सुरक्षा

पौष्टिक आहार के लिये मैक्रो (उर्जा, प्रोटीन एवं वसा) और सूक्ष्म पोषक तत्वों (विटामिन और खनिज) की सन्तुलित मात्रा का होना जरूरी होता है। साठ के दशक में, हरित क्रान्ति का वजह से कुछ विशेष पहलुओं पर जोर दिया गया। जिसमें विशेष प्रकार की खाद्य फसलों को वैश्विक स्तर से बढ़ाया गया। जिससे खाद्यन्न उत्पादन में अपार वृद्धि हुई लेकिन उत्पादित खाद्यान्न में पोषक तत्वों के सन्तुलन में गिरावट हुई। जिसका मुख्य कारण, विविध खादय प्रणालियों के विघटन को माना जाता है। विविध खादय प्रणालियाँ एक बहुक्रियाशील परिदृश्य का समर्थन कर बेहतर खाद्य उत्पादन, जैव विविधता सरंक्षण एवं कृषि परिस्थितिकी तन्त्र को स्थिरता प्रदान करती है। कृषिवानिकी प्रणाली इसका सबसे अच्छा उदाहरण है

इसलिये कृषिवानिकी खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने में एक महत्वपूर्ण एवं अग्रणी भूमिका निभा सकती है जो कि निम्न प्रकार है।

- कृषिवानिकी खाद्यन्नों के उत्पादन में वृद्धिकर खाद्य सुरक्षा प्रदान कर सकता है।
- कृषिवानिकी के माध्यम से खाद्य उत्पादन में विविधता, जैसे फल, सब्जियाँ, गोन्द और दूसरे उत्पाद लागाकर, खाद्य पदार्थो की पोषकता को बढ़ाया जा सकता है।
- विपरीत परिस्थितियों में मुख्य फसल के नष्ट होने पर अन्य उत्पाद को भी अर्जित किया जा सकता है।
- मुख्य फसल के साथ–साथ पेड़ उत्पादों की बिक्री के माध्यम से किसानों का आयु बढ़ाई जा सकती है।
- कृषिवानिकी अपनाकर विभिन्न परिस्थितिक तन्त्र सेवा जैसे परागन क्रिया को बढ़ाया जा सकता है। जो कि फसल उत्पादन के लिए अति आवश्यक है।

- जैव विविधता द्वारा खाद्य सुरक्षा को प्रभावित करने वाले हानिकारक कीटनाशकों के उपयोग को कम किया जा सकता है।
- उत्पाद विविधीकरण के माध्यम से आय बढ़ाने एवं फसलों के जोखिम कम करने में मदद मिल सकती है।
- मिट्टी को सरंक्षित एवं उपजाऊ बनाकर, खाद्यन्न उपलब्धता को सुनिश्चित किया जा सकता है।

जलवायु सुरक्षा

पर्यावरण सुरक्षा में वृक्षों का एक बड़ा महत्व है, जो कि सदियों से ज्ञात है। इसलिये दुनिया में हर धर्म एवं संस्कृति में पेड़ो को एक अलग विशेष स्थान दिया गया है। कृषिवानिकी प्रणाली में पेड़ न केवल प्रत्यक्ष लाभ जैसे भोजन, चारा, ईधन की लकड़ी, उर्वरक एवं रेशा आदि प्रदान करते है। बल्कि अप्रत्यक्ष लाभ जैसे मिट्टी की उर्वरता में सुधार, मिट्टी कटाव में कमी, जल अपवाह को नियंतित्र एवं जल को सरंक्षित करना, वायुमण्डलीय प्रदुषण को फिल्टर करना एवं वायुमण्डल में कार्बन डाई आक्साइड के सन्तुलन को बनाये रखना । कृषि फसलों के साथ – साथ बहुउददेशीय वृक्षों को उगाकर, गहन कृषि एवं वनों की कटाई विकृतियों को दूर करने में सहायता मिल सकती है। कृषिवानिकी कार्बन का भण्डारण करके जलवायु परिवर्तन से निपटने में मदद करती है। इसके अलावा कृषिवानिकी कई रूप मे पर्यावरणीय लाभ प्रदान करता है। जो कि निम्नवत है।

- कार्बन प्रथकरण के माध्यम से जलवायु परिवर्तन शमन ।
- जैव विविधता का संरक्षण।
- मृदा स्वास्थ्य मे सुधार एवं संरक्षण।
- वायुमण्डलीय हवा मे गुणवता सुधार।
- जल संचयन, संरक्षण और फिल्टेशन।
- जैव विविधता का संरक्षण।
- मृदा स्वास्थ्य मे सुधार एवं संरक्षण।
- वायुमण्डलीय हवा मे गुणवता सुधार।
- जल संचयन, संरक्षण और फिल्टेशन।

"हिंदी के बिना मैं गूंगा हूं"

- महात्मा गांधी

पशुओं को चारा आधारित पोषण

सनत कुमार महन्ता एवं शिल्पी केरकेट्टा
भाकृअनुप– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, गौरिया करमा, हजारीबाग, झारखण्ड– 825405

पशुओं के पोषण में चारे का महत्वपूर्ण योगदान होता है। भिन्न–भिन्न अवस्था एवं पशुओं की उत्पादकता के लिए चारे की मात्रा एवं गुणवत्ता का निर्धारण करके खिलाने से पशुओं के स्वास्थ्य एवं उत्पादकता को प्रवन्धित किया जा सकता है। हरे चारे के उपयोग को बढ़ावा देने की जरूरत झारखण्ड़ जैसे प्रदेश में अधिक प्रासंगिक हो जाती है जहॉ पर पशुओं को अधिकांशतः चराई पर ही निर्भर रखा जाता है। चारे के समुचित उपयोग से यहाँ के पशुओं की उत्पादकता एवं उनका स्वास्थ्य बेहतर किया जा सकता है।

गांवों में किसान मुख्यतः अपने पशुओं को फसलों के अवशिष्ट को थोड़े हरे चारे एवं दाने के साथ मिलाकर खिलाते हैं। परन्तु दाना मंहगा होने की वजह से पशु आहार के कीमत में वृद्धि हो जाती है। परन्तु हरा चारा दाना की तुलना में सस्ता होता है एवं दुग्ध उत्पादन में सहायक होता है। अध्धयन से यह ज्ञात हुआ है कि हरा चारा आधारित पशु आहार दाना आधारित आहार से सस्ता होता है एवं इसका दुग्ध उत्पादन में भी कोई विपरीत प्रभाव नही पड़ता है। हरा चारा खिलाने से दुग्ध उत्पादन में प्रायः 40 प्रतिशत की आर्थिक बचत होती है।

हरा चारा खिलाने के लाभ : हरा चारा अत्यन्त लाभकारी पाया गया है जिसका वर्णन निम्नप्रकार से है।

- आसानी से पचनीय
- पशुओं द्वारा अधिक ग्रहणता
- पशुओं में किसी प्रकार का विकार नहीं उत्पन्न करता
- शरीर के तापमान में ठंडक पहुंचाता है।
- विटामिन ए का अच्छा श्रोत। हरे चारे की कमी से पशु कमजोर, विकृत एवं उनमें अंधे बछड़ों को जन्म देने की सम्भावना रहती है।
- विभिन्न पौधों द्वारा ज्ञात हुआ है कि सिर्फ हरा चारा खिलाकर करीब 10 लीटर दुध की प्राप्ती की जा सकती है एवं दाना खिलाने की अपेक्षा 20 प्रतिशत तक की आर्थिक बचत की जा सकती है।

चारे की गुणवत्ता : चारे की गुणवत्ता विभिन्न कारणों से प्रभावित होती हैं जिसके मुख्य कारण निम्न हैं।
अ. चारे में तत्वों की मात्रा

- चारे की प्रजाति
- चारे की काटने की अवस्था
- जलवायु एवं मौसम

- मृदा की गुणवत्ता एवं खाद का प्रभाव
- तना या पत्तियों की मात्रा अच्छे किस्म के चारे की कमी से पशु उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

ब. चारे की स्वैच्छिक ग्रहता

- चारे की स्वैच्छिक ग्राहता महत्वपूर्ण कारक है। जो चारे की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। जिस चारे को पशु ज्यादा खाता है उसकी गुणवत्ता अच्छी मानी जाती है।

स. पोषक तत्वों की पाचकता

- चारे की रासायनिक संरचना
- चारे की काटने की अवस्था
- चारे की भौतिक अवस्था
- पशु प्रजाति/ जाति
- पशु की शारीरिक अवस्था
- चारा संरक्षण विधि

चारा खिलाने की पद्धतियां : देश के विभिन्न भागों में पशुओं को खिलाने की अनेक पद्धतियां प्रचलित हैं जिनका निम्न लिखित है।

- केवल चराई
- चराई के साथ पशुओं को सूखा चारा एवं भूसा खिलाना
- चराई के साथ पशुओं को दाना खिलाना
- बांधकर पशुओं को चारा खिलाना
  - सूखा चारा खिलाना
  - हरा चारा खिलाना
  - सूखा व हरा चारा मिलाकर खिलाना
- पशुओं को बांधकर चारा एवं दाना खिलाना
- पशुओं को बांधकर चारा दाना मिलाकर (सानी बनाकर) खिलाना

प्रचलित चारा खिलाने की पद्धतियों की कमियां : पशुओं की आवश्यकता एवं चारे फसलों का गुणवत्ता के बारें में किसानों को सही जानकारी न होने पर कृषक स्तर पर पोषण प्रबंध पद्धतियों में निम्न कमियां आमतौर पर पायी जाती है।

- पशु या तो ज्यादा खा लेता है या कम खाते है।
- असंतुलित अहार की आपूर्ति।
- खाद्य तत्वों की कमी के कारण पीड़ित होना।
- पशु के उत्पादन एवं वृद्धि पर विपरीत प्रभाव।

दुधारू पशुओं का पोषण प्रबंधन

दुधारू गाय एवं भैसों को 1–2 किलो सूखी घास/भूसे के साथ दलहनी चारा जैसे बरसीम, रिजका अथवा लोबिया खिलाने से 10 लीटर तक दूध प्रतिदिन प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु 10 लीटर प्रतिदिन से अधिक दुधारू पशुओं को उर्जा देने वाला दाना 1 किग्रा प्रति 2.5–3.0 लीटर दूध की दर से देना चाहिए। दलहनी चारा को अदलहनीय चारे के साथ 2:1 अथवा 1:1 के अनुपात में मिलाकर खिलाना ज्यादा लाभप्रद है। उदाहरण हेतु दलहनी चारा जैसे लोबिया, बरसीम, रिजका, स्टाइलो, सेम इत्यादि को अदलहनीय चारा जैसे मक्का, जई, ज्वार, संकर नेपियर, गिनी घास एवं पैरा घास इत्यादि के साथ

मिलाकर खिलाई जा सकती है। घासी फसलों को दलहनी चारों के साथ मिलाकर बुआई की जा सकती है एवं इस तरह पशुओं को संतुलित आहार प्रदान किया जा सकता है। ऐसा पाया गया है कि 1 भाग बरसीम एवं 1 भाग जई 1 किलो दाना के साथ गाय को खिलाने से प्रतिदिन 7–8 लीटर तक दूध प्राप्त किया जा सकता है। इसी तरह संकर नेपियर एवं रिजका 3:1 के अनुपात में अथवा मक्का एवं लोबिया 1:1 के अनुपात में मिलाकर खिलाने से 7 लीटर दूध प्रतिदिन प्रति गाय प्राप्त की जा सकती है।

अदलहनीय चारा फसलों की गुणवत्ता बहुत कम है क्योंकि इनमें क्रूड प्रोटिन की कमी एवं रेषे की अधिकता रहती है अतः पशुओं द्वारा इनकी ग्रहणता भी कम रहती है। इसलिए इन्हें दाने के साथ पशुओं को देना जरूरी है। जई को 10 प्रतिशत फूल की अवस्था में काटकर खिलाने से 6–8 लीटर दूध प्रतिदिन प्राप्त किया जा सकता है।

दुधारू गाय एवं भैसों के आहार में कम से कम 8–10 प्रतिशत डी.सी.पी (पचनीय प्रोटिन) एवं 60–62 प्रतिशत टी.डी.एन. (उर्जा) होना जरूरी है। जिससे की उनमें 2 प्रतिशत की दर से शुष्क पदार्थ की ग्रहणता हो। दलहनी चारों में प्रायः 12–14 प्रतिशत डी.सी.पी. एवं 58–60 प्रतिशत टी.डी.एन. मौजूद होता है। जबकि अदलहनीय चारा में 4–5 प्रतिशत डी.सी.पी. एवं 60–65 प्रतिशत टी.डी.एन. होता है। अतः दलहनी चारा एवं अदलहनीय चारों का 1:1 मिश्रण उचित रहता है। मात्रा एक प्रकार के चारे की उपलब्धता की दशा में दुधारू पशुओं के आहार में दूसरी प्रकार के तत्वो का समावेश दाने से किया जा सकता है। उदाहरणार्थ दलहनी चारे की उपलब्धता होने पर उर्जा की मात्रा को मक्का, जई अथवा जौ के दाने से तथा एक दलहनी चारे की उपलब्धता में प्रोटिन की मात्रा को खली से पूर्ण किया जा सकता है।

अधिक दूध देने वाले पशुओं का आहार

अधिक दूध देने वाले पशुओं को संतुलित आहार देना अत्यंत आवश्यक होता है। प्रतिदिन 10 कि.ग्रा. तक दूध देने वाली गायों को मिले जुले आहार के रूप में फसलों के अवशिष्ट, हरा चारा और दाना (18 प्रतिशत सी.पी. एवं 70 प्रतिशत टी.डी.एन.) मिलाकर देना चाहियें, यदि हरा चारा न हो तो भूसा और दाना भी दे सकते हैं। अगर दूध उत्पादन 11–20 कि.ग्रा. हो तो उन गायों को अधिक संतुलित आहार की आवश्यकता होती है। उनके आहार मे थोड़ा भूसा, दलहनी और अदलहनी हरा चारा और उत्तम दाना (20 प्रतिशत सी.पी. एवं 72 प्रतिशत टी.ड़ी.एन) होना चाहियें। यदि दूध उत्पादन 20 कि.ग्रा. से अधिक हो तो उनके आहार मे दलहनी और अदलहनी हरे चारा के साथ– साथ बहुत अच्छी गुणवत्ता वाला दाना (22 प्रतिशत सी.पी. एवं 74 प्रतिशत टी.डी. एन) भी होना चाहियें।

सारणी 1: अधिक दूध देने वाली गायों का आहार

चारे के प्रकार	मात्रा (कि.ग्रा./गाय/दिन
अ) वर्ग–1(वनज– 350–400 कि.ग्रा, दूध उत्पादन –15 कि.ग्रा., वासा–4–5%)	
1)मक्का/ज्वार/जई	20
2)बरसीम/रिजका/लोबिया	25
3)गेहूँ का भूसा/चावल का भूसा	1
4)दाना	5
ब) वर्ग– 2 (वनज– 350–400 कि.ग्रा., दूध उत्पादन– 25 कि.ग्रा., वासा–4–5%)	
1)मक्का/ज्वार/जई	20–25
2)बरसीम/रिजका/लोबिया	25–25
3)दाना	8–9

उत्तम आहार का आधार

यथेष्ठ उत्पादन के लिए दुधारू पशुओं को आवश्यक तत्वों की पूर्ति उचित मात्रा तथा उचित अनुपात में करना आवश्यक है। पशु, आहार का पर्याप्त उपयोग तभी कर सकता है जब भोजन में निम्नलिखित तत्व पर्याप्त मात्रा में हों।

- जल (पीने योग्य)
- ऊर्जा
- सानी के लिए आवश्यक रेशायुक्त कार्बोहाइड्रेट
- ऊर्जायुक्त रेशारहित कार्बोहाइड्रेट
- प्रोटिन दोनों रयूमन घुलनशील एवं अघुलनशील
- आवश्यक फटा अम्ल
- लवण मैक्रो तथा माइक्रो
- विटामिन
- आहार में शुष्क मात्रा पशु द्वारा ग्रहण करने योग्य भोजन की मात्रा में समानता होनी चाहिए।
- आहार में विषाक्त पदार्थ/ अनावश्यक तत्व जो कि पशु के स्वास्थ्य को हानि पहुंचा सकते हैं न हो अर्थात आहार अच्छा तथा स्वास्थ्यवर्धक होना चाहिए।
- आहार ग्रहण करने के योग्य कम लागत तथा कम श्रमिक दिनों में उपलब्धता होना चाहिए।

चारा/ भोजन के बारे में आवश्यक जानकारी : प्रत्येक चारे/चारा आधारित आहार में उपलब्ध तत्वों निम्नलिखित की आवश्यक जानकारी होनी महत्वपूर्ण है।

- चारे में उपलब्ध जल की तथा उसकी रासायनिक संरचना
- काटते समय चारे की अवस्था
- चारे की भौतिक संरचना
- संग्रहण की अवधि

"राष्ट्रभाषा के बिना स्वतंत्रता निरर्थक है।"

- अवनींद्र कुमार विद्यालंकार

जीवाणु खादः किसानों के लिए एक वरदान

हिमानी प्रिया[1], रंजीत सिंह[1], मनोज चौधरी[1] शिवमंगल प्रसाद[2]
एवं अमन जायसवाल[3]
[1]भाकृअनुप– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, गौरिया करमा, हजारीबाग, झारखण्ड– 825405
[2]केंद्रीय वर्षाश्रित उपराऊं भूमि चावल अनुसन्धान केंद्र (भा.कृ.अनु.प.रा.चा.अनु.सं), हजारीबाग
[3]डॉ राजेन्द्र प्रसाद केंद्रीय कृषि युनिवर्सिटी पूसा समस्तीपुर बिहार (डॉ. रा.प्र.कें.कृ.यू.,पूसा, समस्तीपुर, बिहार)

फसलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता सुधार में जीवाणु खादों का योगदान किसी से छुपा नही हैं। जीवाणु खाद स्वंम एवं पौधों के साथ एक सकारात्मक सयोंजन द्वारा अनेक शुक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता को सुनिश्चित करने में मदद करते हैं। ये न केवल फसल की उपज बढ़ाने में मदद करते है अपितु मृदा की दशाओं के सुधार में भी सकांरात्मक भूमिका निभाते हैं। आज के परिवेश में जब प्राकृतिक खेती, जैविक खेती, रसायन मुक्त खेती पर बल दिया जा रहा है, जीवाणु खाद एक विकल्प के रूप में हमारे सामने मौजूद है, जिसके उपयोग से किसान अपनी फसल का उत्पादन बढ़ा सकते हैं।

हमारी आधुनिक खेती में पैदावार को लगातार बढ़ाना हमारे लिए सबसे बड़ी चुनौती है और कृषि उत्पादन बढाने के लिए हम सघन खेती पर जोर दे रहे हैं। परन्तु सघन खेती के फलस्वरूप पैदावार में बढ़ोतरी तो हो रही है लेकिन साथ ही साथ इससे मृदा में महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की कमी हो रही है और इस कमी को पूरा करने के लिए हम पूर्णरूप से रासायनिक खाद पर निर्भर हैं। हमारे देश में अधिकांश किसान संतृप्त मात्रा में रासायनिक खाद के प्रयोग के बावजूद इष्टतम उत्पादन लेने से वंचित हैं। साथ ही साथ इन रासायनिक खाद की उत्पादन दिन प्रतिदिन महंगा एवं कम होता जा रहा है, जिससे बहुत सारे किसान इसे खरीद नहीं पाते हैं। इसकी वजह से रसायनिक खाद के प्रयोग से होने वाला लाभ घटता जा रहा है। साथ ही साथ इसके अंधाधुंध प्रयोग से मृदा संरचना, स्वास्थ्य तथा उर्वरा शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पद रहा है, जिससे देश में स्थायी खेती हेतु खतरा पैदा हो रहा है। इसके अलावा मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा में कमी, मृदा क्षारीयता, मृदा उर्वरता में गिरावट तथा रसायनों के अवशेष के फलस्वरूप हमारी जल, वायु तथा भूमि भी प्रदूषित होने के कारण मानव स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पर रहा है।

अतः इन परिस्थितियों में रसायनिक खाद के साथ – साथ किसी और ऐसे विकल्प के उपयोग की तत्काल आवश्यकता है जिसके उपयोग से हम इन समस्याओं से निदान पा सकते हैं। इसके परिणामस्वरुप जैव उर्वरकों के प्रयोग पर अधिक जोर दिया जा रहा है। जीवाणु खाद के प्रयोग से फसल को पोषक तत्वों की आपूर्ति होने के साथ मृदा की उपज में भी वृद्धि होती है।

जीवाणु खाद क्या है ?

जीवाणु खाद लाभकारी सूक्ष्मजीवों के सक्रिय प्रभावी विभेद की पर्याप्त संख्याओं का ऐसा जीवंत मिश्रण है, जिसका बीज, जड़ों तथा मिट्टी में प्रयोग करने पर फसलों को अधिक मात्रा में पोषक तत्व मिलते हैं, साथ ही साथ मिटटी की माइक्रोबियल क्रियाशीलता एवं सामान्य स्वास्थ्य में वृद्धि होती है। यह मिटटी में अनुपलब्ध तत्वों को उपलब्ध रूप में बदल कर पौधों को प्रदान करता है। इसके उपयोग से रसायनिक खाद की एक तिहाई मात्रा तक की बचत की जा सकती है। जीवाणु खाद विशेष सूक्ष्मजीवों जैसे नीलहरित शैवाल, एजोला, एजोटोबैक्टर, एज़ोस्पाइरिलम, बैसिलस, स्यूडोमोनास, राइज़ोबियम, माइकोराइजा, पेनिसिलियम, ग्लोमस इत्यादि को चारकोल, लिग्नाईट, सुक्रोज, स्टार्च, ग्लिसेरौल आदि में मिलाकर तैयार किये जाते हैं। जीवाणु खाद मृदा में मौजूद लाभकारी सूक्ष्मजीवों का वैज्ञानिक तरीकों से चुनाव कर प्रयोगशाला में तैयार की जाती है। ये प्रायः शुद्ध कल्चर के नाम से बाज़ार में उपलब्ध होते हैं, जो की एक प्राकृतिक उत्पाद है। इनका उपयोग विभिन्न फसलों में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैसियम, जिंक, कार्बन एवं मत्वपूर्ण पोषक तत्वों की आंशिक पूर्ति हेतु किया जाता है। जीवाणु खाद में इन लाभदायक जीवाणुओं की संख्या एक ग्राम में दस करोड़ से अधिक रखी जाती है। फसलों में जीवाणु खाद के इस्तेमाल करने से वायुमंडल में उपस्थित नाइट्रोजन पौधों को (अमोनिया के रूप में) सुगमता से उपलब्ध होती है तथा भूमि में पहले से मौजूद अघुलनशील फॉस्फोरस आदि पोषक तत्व घुलनशील अवस्था में

परिवर्तित होकर पौधों को आसानी से उपलब्ध होते हैं। जीवाणु खाद रासायनिक खादों के पूरक हैं, विकल्प कतई नहीं है।

जीवाणु खाद के प्रकार

जीवाणुओं की क्रियाकलाप तथा फसलों में उपयोग के आधार पर जीवाणु खाद को निम्न वर्गों में बांटा गया है :

जीवाणु खाद के प्रकार	जीवाणु का नाम	फसल
• **नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले जीवाणु खाद:** यह वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके पौधों को पोषक तत्व उपलब्ध करवाता है।	राइजोबियम	दलहन फसल
	एजोला	धान
	नीलहरित शैवाल	धान
	एज़ोटोबैक्टर	अन्न वाली फसलें, सब्जियां, कपास तथा गन्ना
	एज़ोस्पाइरिलम	गैर दलहनी फसल
	एसिटोबैक्टर	गन्ना
	एक्टिनोराईजा	वृक्ष जाति
• **फोस्फोरस को घुलनशील करने वाले जीवाणु खाद:** ये जीवाणु मिट्टी में मौजूद अनुपलब्ध फोस्फोरस को उपलब्ध रूप में पौधों तक पहुचाने में मदद करता है।	एस्पर्जिलस, पैनिसिलीयम, स्यूडोमोनास, बैसिलस आदि	सभी फसल जैसे गेहूं, धान, बोदी, सोयाबीन, मसूर, चना, आलू इत्यादि
• **पोटास व जिंक घुलनशील करने वाले जीवाणु खाद:** ये जीवाणु मिट्टी में मौजूद पोटासियम तथा जिंक तत्वों को पौधों तक पहुचाने में मदद करता है।	एसीडोथायोबैसिलस फेरोऑक्सीडेन्स, पेनीबैसिलस स्प., बैसिलस सर्कुलेंस	सभी फसल
• **माइकोराईजल कवक:** यह एक फफूंदी है जो मिट्टी में मौजूद बंधित फोस्फोरस, जिंक, कॉपर तथा आयरन को पौधों तक पहुचाने में मदद करता है।	ग्लोमस एग्रीगेटम, ग्लोमस मोनोस्पोरम	टमाटर, बैंगन, मिर्च, आलू, प्याज, लहसुन, भिन्डी आदि
• **कम्पोस्ट बनाने वाले जीवाणु:**	एस्पर्जिलस नाइजर, ट्राइकोडरमा भिरीडी	सभी फसल

जीवाणु खाद एवं विभिन्न फसलों में उनकी मात्रा एवं योगदान :

जीवाणु खाद का नाम	फसल	उपचार विधि	पैकेट मात्रा प्रति एकड़	पोषक तत्व की उपलब्धता में योगदान
राइजोबियम	दलहन	बीज / मृदा उपचार	200 ग्राम	नाइट्रोजनः 50–10किग्रा. / हे. / सीजन 10 – 35 % उत्पादकता में वृद्धि
एज़ोटोबैक्टर	मक्का,गेहूं, धान, पास, सब्जियां	बीज / मृदा उपचार	200 ग्राम	नाइट्रोजनः 20–25किग्रा. / हे. / सीजन 10–15 % उत्पादकता में वृद्धि
एज़ोस्पाइरिलम	गैर दलहनी फसल	बीज / मृदा उपचार	200 ग्राम	नाइट्रोजनः 20–40 किग्रा. / हे. / सीजन 10–15 % उत्पादकता में वृद्धि
नीलहरित शैवाल	धान	दोहरी फसल	500 ग्राम	नाइट्रोजनः 20–25 किग्रा. / हे. / सीजन 10–12 % उत्पादकता में वृद्धि
एजोला	धान	दोहरी फसल	200 ग्राम	नाइट्रोजनः 20–80 किग्रा. / हे. / सीजन 10–20 % उत्पादकता में वृद्धि
पी.एस.बी.	अन्न, सब्जियां, फल	बीज / मृदा उपचार	200 ग्राम	फोस्फोरसः 30–35 किग्रा. / हे. / सीजन

जीवाणु खाद के प्रयोग से होने वाले लाभ :

- इनके प्रयोग से फसलों की पोषक तत्वों की जरूरत को पूरा कर उनकी उत्पादन तथा उत्पादकता में बढ़ोतरी की जा सकती है।
- जीवाणु खाद के प्रयोग से फसल की उत्पादकता में लभग 10–15 % की वृद्धि होती है।
- जीवाणु खाद के उपयोग से रसायनिक खादों विशेष रूप से नाइट्रोजन और फोस्फोरस की जरुरत का 20–25 % तक पूरी की जा सकती है।
- इन जीवाणु खादों को मिटटी में प्रयोग से मृदा की उर्वरा एवं जलधारण शक्ति बढती है।
- ये फसलों के अंकुरण को शीघ्र करवाते हैं।
- इनके प्रयोग से फसलों के कल्लों की संख्या में वृद्धि होती है।
- ये मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बरक़रार रखने में मदद करते हैं।
- इसके प्रयोग से फसल उत्पादन की लागत घटती है।
- इसके प्रयोग से नाइट्रोजन व घुलनशील फॉस्फोरस, पोटैसियम, जिंक, कार्बन एवं मत्वपूर्ण पोषक तत्वों की फसल के लिए उपलब्धता बढती है।
- इसके प्रयोग से भूमि की मृदा संरचना बेहतर रहती है।

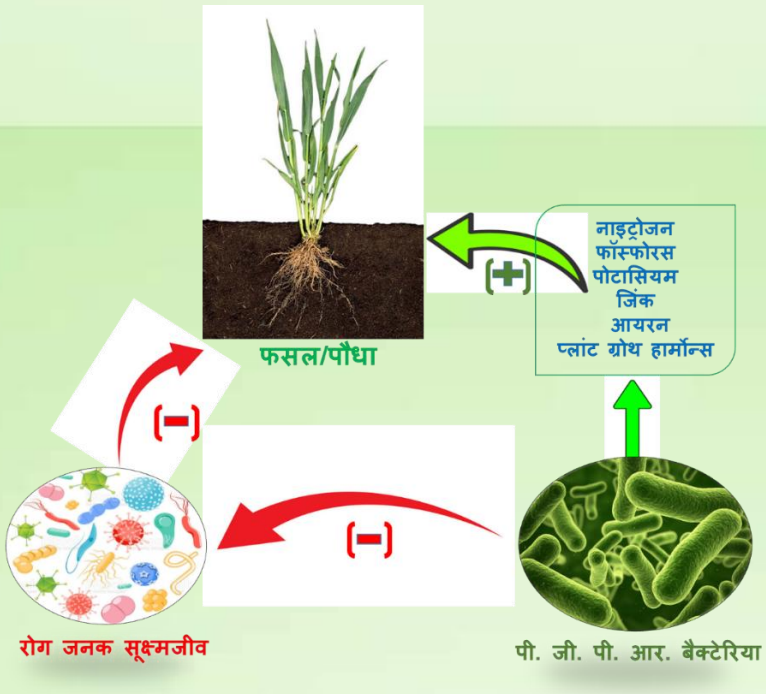

जीवाणु खाद के प्रयोग से पौधों में होने वाले लाभ

जीवाणु खाद के प्रयोग करने का तरीका

जीवाणु खाद को फसलों में चार विभिन्न तरीके से प्रयोग किया जाता है:

- **बीज उपचार विधि:** जीवाणु खाद के उपयोग की यह एक सर्वश्रेष्ठ विधि है। इस विधि में आधे लीटर पानी में 50 ग्राम गुड़ को उबाल लेते हैं और इसे ठंढा होने देते हैं। ठंढा होने के बाद इसमें जीवाणु खाद @ 200 ग्राम को मिलकर घोल बनाते हैं और इसे 10 किलोग्राम बीज के साथ मिलाकर छाया में सुखाते हैं। सूखने के तुरंत बाद उपचारित बीजों की बुवाई करते हैं।
- **पौध जड़ उपचार विधि:** इस विधि से सब्जी, फल तथा धान के जड़ों को उपचारित किया जाता है। इसके लिए 5–7 लीटर पानी में 1 किलोग्राम एजोटोबैक्टर व 1 किलोग्राम पीएसबी तथा 250 ग्राम गुड़ को मिलकर घोल तैयार करते हैं। पौधों को रोपाई से पहले 10 मिनट तक इस घोल में डुबोकर रखने के बाद इनकी रोपाई करते हैं।

- **कंद उपचार विधिः** यह विधि मुख्य रूप से गन्ना, आलू, अदरक, तथा अरबी जैसे फसलों के कन्दों के उपचार के लिए उपयोगी है। इस विधि में 1 किलोग्राम एजोटोबैक्टर व 1 किलोग्राम पीएसबी जीवाणु खादों को 20–30 लीटर पानी में घोल बनाकर इसमें कंदों को 10 मिनट तक डुबोते हैं इसके पश्चात तुरंत इसकी रोपाई कर देते हैं।
- **मृदा उपचार विधिः** 7–10 किलोग्राम जीवाणु खाद को 5–100 किलोग्राम मिट्टी या कम्पोस्ट का मिश्रण बनाकर रात भर छोड़ देते हैं, इसके बाद अंतिम जुताई पर खेत में मिला देते हैं।

जीवाणु खाद के प्रयोग करने का तरीका

****

"हिन्दी ही राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांध सकती है।"

- बालकृष्ण शर्मा नवीन

झारखण्ड में गुणवत्तायुक्त प्रोटीन एकल संकर मक्का के बीज उत्पादन की तकनीक

संतोष कुमार[1], प्रीती सिंह[1], नितीश रंजन प्रकाश[2], अशोक कुमार[1], मोना नरगड़े[2] एवं विशाल त्यागी[2]

[1]भाकृअनुप– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, गौरिया करमा, हजारीबाग, झारखण्ड– 825405

[2]वैज्ञानिक, भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली

मक्का दुनिया भर के 170 से अधिक देशों में 194 मि० हे० क्षेत्र में उगाई जाने वाली सबसे बहुमुखी खाद्य फसल है। झारखंड में धान के बाद मक्का दूसरी सबसे महत्वपूर्ण फसल है। हालांकि, झारखंड में मक्का की उत्पादकता (2.02 टन/हे.) राष्ट्रीय औसत 2.6 टन/हेक्टेयर से कम है। जिसका मुख्य कारण गुणवत्तापूर्ण बीज का समय पर न उपलब्ध हो पाना है। मक्के में क्यूपीएम संकर किस्में विकसित किए गए हैं और इसकी खेती देश भर में विभिन्न कृषि–जलवयु स्थितियों में संभव हैं। चुकि, क्यूपीयम की खेती के लिए मुख्य बाधा बीजों की अनुपलब्धता है और इसका सीधा संबंध सक्रिय बीज उत्पादन कार्यक्रम की अनुपस्थिति से है। इस प्रकार, झारखंड की पोषण सुरक्षा के साथ–साथ मक्का उत्पादकता में सुधार के लिए, उच्च उपज देने वाले एकल संकर क्यूपीएम मक्का बीज उत्पादन महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। राज्य में संकर मक्का बीज उत्पादन को बढ़ावा देनें से किसानों में संकर बीजों के बारे में जागरूकता आएगी। यह गुणवत्ता युक्त संकर मक्का बीजों की उपलब्धता किसानों तक सुनिश्चित करेगा।

मक्का दुनिया भर के 170 से अधिक देशों में 194 मि.हे. क्षेत्र में उगाई जाने वाली सबसे बहुमुखी खाद्य फसल है, जिसमें 1148 मिलियन टन उत्पादन और 5.9 टन/हेक्टेयर उत्पादकता है। भारत में, मक्का 9.2 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर 27.2 मिलियन टन के उत्पादन और 2.9 टन/हेक्टेयर की उत्पादकता के साथ उगाया जाता है। मक्का दुनिया की सबसे महत्वपूर्ण अनाज फसलों में से एक है और अधिकांश विकासशील देशों की खाद सुरक्षा में योगदान देता है। इसका महत्व इस तथ्य में निहित है कि इसका उपयोग न केवल मानव भोजन और पशु आहार के लिए किया जाता है बल्कि व्यापक रूप से मकई स्टार्च उद्योग, मकई के तेल उत्पादन, बेबी कॉन एवं स्वीट कॉन के प्रसंस्करण उद्योग इत्यादि के लिए भी उपयोग किया जाता है।

भारत में मक्का, चावल और गेहूं के बाद तीसरी सबसे महत्वपूर्ण फसल के रूप में उभर रहा है। भारत में 14 वें सबसे अधिक अबादी वाले राज्य के रूप में झारखंड 33 मिलियन लोगों का घर है, जिसमें से 13 मिलियन लोग गरीब है। इस राज्य में 70 प्रतिशत से अधिक लोग ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं, और राज्य की लगभग 37 प्रतिशत अबादी को गरीबी रेखा से नीचे (बीपीएल) के रूप में वर्गीकृत किया गया है। झारखंड में धान के बाद मक्का दूसरी सबसे महत्वपूर्ण फसल है और ज्यादातर, खरीफ मौसम के दौरान वर्षा सिंचित, पहाड़ी क्षेत्रों में उगाई जाती है। इस राज्य में मक्का का रकबा 211.11 हजार हेक्टर (2006–07) (से बढ़कर 2017–18 में 294 हजार हेक्टर हो गया। उत्पादकता विश्लेषण ने 1999–2000 से 2017–18 के दौरान राज्य में 1384 से 2025 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की उल्लेखनीय वृद्धि दिखाई है। झारखंड में इस फसल में समग्र सकारात्मक वृद्धि पायी गयी है। हालांकि, झारखंड में मक्का की उत्पादकता (2.02 टन/हे.) राष्ट्रीय औसत 2.6 टन/हेक्टेयर से कम है। जिसका मुख्य कारण गुणवत्तापूर्ण बीज का समय पर न उपलब्ध हो पाना है। ज्यादातर किसान या तो स्थानीय निजी कंपनियों के संकर बीजों/स्थानीय किस्मों का उपयोग कर रहे हैं। इस क्षेत्र में उच्च उपज देने वाली संकर किस्मों और खेती की तकनीकों के वैज्ञानिक तरीके को अपनाकर मक्का की उत्पादकता बढ़ाने की पर्याप्त क्षमता है।

गुणवत्तायुक्त प्रोटिन मक्का

कुल उत्पादन का 65% से अधिक मक्का सीधे भोजन और पोल्ट्री चारा के लिए उपयोग किया जाता है, अतः मक्के की गुणवत्ता देश के खाद्य और पोषण सुरक्षा के अत्यंत महत्वपूर्ण है। समानय मक्का की प्रोटीन संरचना में दो आवश्यक अमीनो एसिड, लाइसिन और ट्रिप्टोफैन की कमी होने का एक

अंतर्निहित दोष है। ये दो अमीनो एसिड (लाइसिन और ट्रिप्टोफैन) हमारे शरीर द्वारा संश्लंषित नहीं होते हैं। समान्य मक्का में पाया जाने वाला विटामिन ए का स्तर भी मानव शरीर की दैनिक आहार आवश्यकता को पूरा करने लिए पर्याप्त नहीं है। इसलिए, अपने मुख्य भोजन के रूप में मक्का पर निर्भर अबादी आम तौर पर मैरास्मस और क्वाशियोरकर जैसे प्रोटिन की कमी के विकारों को दर्शाती है। इस बात को ध्यान में रखते हुए, विभिन्न पैतृक वंशों में अपारदर्शी–2 उत्परिवर्ती जीन + संशोधक को शामिल करके गुणवत्ता प्रोटिन मक्का (क्यूपीएम) विकसित किया गया है। क्यूपीएम समान्य मक्का की तरह दिखता है और स्वाद देता है, लेकिन इसमे संतुलित अमीनो एसिड प्रोफाइल के साथ लाइसिन और ट्रिप्टोफैन की गुणवत्ता लगभग दोगुनी होती है। इस संबंध में, ओपेक –2 (ओ 2) और फ़्लोरी–2 (एफ 2) उत्परिवर्ती की खोज ने मक्का की प्रोटिन गुणवत्ता में सुधार के लिए जबरदस्त संभावनाएं सृजित की, जिसके बाद गुणवत्ता युक्त प्रोटिन मक्का (कयूपीएम) का विकास हुआ। क्यूपीएम जो समान्य मक्का पर पौष्टिक रूप से बेहतर है, न केवल खाद्य और पोषण सुरक्षा के लिए बाि के लिए बल्कि कुक्कुट, सुअर और पशु क्षेत्रौं के लिए गुणवत्ता युक्त चारे के लिए भी अपने महत्व को इंगित करने के लिए नई गतिशीलता प्रदान करता है। गुणवत्ता युक्त प्रोटिन मक्का में लाइसिन और ट्रीप्टोफन एमिनोएसिड की उच्च मात्रा और लिउसीन और आइसोल्यूसीन की कम मात्रा वाले एमिनो एसिड की संतुलित मात्रा होने की विशिष्ट विशेषताएं होती हैं। गुणवत्ता युक्त प्रोटीन मक्का में इन सभी आवश्यक एमिनो एसिड का संतुलित अनुपात, प्रोटीन के जैविक मूल्य को बढ़ाता है। क्यूपीएम में प्रोटीन का जैविक मूल्य सामान्य मक्का प्रोटीन की तुलना में दोगुना है, जो दूध प्रोटीन के बहुत करीब है क्योंकि दूध और क्यूपीएम प्रोटिन का जैविक मूल्य क्रमशः 90 और 80% है, जबकि यह सामान्य मक्का में 50% से कम है। मक्के में क्यूपीएम संकर किस्में विकसित किए गए हैं और इसकी खेती देश भर में विभिन्न कृषि–जलवयु स्थितियों में संभव हैं। क्यूपीएम की उत्पादन तकनीक क्यूपीएम की शुद्धता को बनाए रखने के लिए अलगाव को छोड़कर सामान्य अनाज मक्का के समान है। इसे सामान्य मक्का के साथ नहीं उगाया जाना चाहिए। इसके उत्पादन के माध्यम से किसान अपने पशुओं और पोल्ट्री के लिए प्रोटिन समृद्ध फ़ीड उपलब्ध करा सकते हैं, जिसके परिणामस्वरूप पशुओं के दूध और मुर्गे के शारिरिक द्रव्यमान की उत्पादकता में वृद्धि होगी और साथ ही साथ सामान्य मक्का की तुलना में क्यूपीएम मक्का के प्रसंस्करण या मूल्य संवर्धन से उच्च आय की प्राप्ति होगी।

एमिनो एसिड	समान्य मक्का (प्रोटिन में प्रतिशतता)	गुणवता युक्त प्रोटिन मक्का (प्रोटिन में प्रतिशतता)
लायसीन	1.88	4.07
ट्रिप्टोफन	0.40	1.09
लिउसीन	14.76	9.19
आइसो लिउसीन	4.13	3.63

झारखंड के कई वंचित दूरदराज के इलाकों में, विशेष रूप से बच्चों और महिलाओं में कुपोषण की गंभीर समस्या है। झारखंड की जनजातीय आबादी कुल आबादी का लगभग 26.3% है। इस प्रकार, एक बड़ी जनजातीय अबादी मौजूद है जो आर्थिक रूप से कमजोर तथा पौष्टिक अहारो से वंचित है। इन ग्रामीण और जनजातीय क्षेत्रों में आहार संबंधी आवश्यकताओ का एक महत्वपूर्ण हिस्सा मक्का से पूरा किया जा रहा है और इन क्षेत्रों में सामान्य मक्का की ही खेती की जाती है। सामान्य मक्का में पाए जाने वाले प्रोटिन की गुणवत्ता और विटामिन ए का स्तर मानव शरीर या अन्य मोनोगैस्ट्रिक जानवरों की दैनिक आहार आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है। उन्नत लाइसिन, ट्रिप्टोफैन और प्रोविटामिन ए के साथ क्यूपीएम मक्का में कुपोषण को कम करने की अपार क्षमता है।

बेहतर प्रोटिन गुणवत्ता और प्रोविटामिन ए के साथ मक्का की प्रजातियां विकसित की गई है, जिसके प्रसार और किसानों को इन किस्मों को अपनाने के लिए बढ़ावा देने से आहार और स्वास्थ्य में सुधार किया जा सकता है। इन बहु–पोषक तत्वों से भरपूर मक्का को अपनाने से संपूर्ण पोषण सुरक्षा प्राप्त करने में मदद मिलेगी।

चुकि, क्यूपीयम की खेती के लिए मुख्य बाधा बीजों की अनुपलब्धता है और इसका सीधा संबंध सक्रिय बीज उत्पादन कार्यक्रम की अनुपस्थिति से है। इस प्रकार, झारखंड की पोषण सुरक्षा के साथ–साथ

मक्का उत्पादकता में सुधार के लिए, उच्च उपज देने वाले एकल संकर क्यूपीएम मक्का बीज उत्पादन महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। राज्य में संकर मक्का बीज उत्पादन को बढ़ावा देनें से किसानों में संकर बीजों के बारे में जागरूकता आएगी। यह गुणवत्ता युक्त संकर मक्का बीजों की उपलब्धता किसानों तक सुनिश्चित करेगा। मक्का में संकर बीज उत्पादन करने के लिए कुछ जानकारियों का होना बहुत आवश्यक हैं। किसान भाई मक्का का बीज उत्पादन करके सामान्य फसल से ज्यादा लाभ प्राप्त कर सकते हैं। एकल संकर मक्का के बीज उत्पादन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण तकनीकी जानकारी इस प्रकार है।

एकल संकर बीज

संकर आनुवंशिक रूप से असंबंधित या भिन्न माता–पिता (शुद्ध, नस्ल, किस्मों या आबादी) के बीच पहली पीढ़ी के क्रॉस होते हैं। जब मक्का के नर पौध के परागकोष से निकले परागकण, मादा पौधे के फूल के वर्तिकाग्र को परागित करते हैं तब निषेचन पश्चात संकर बीज का निर्माण होता है।

एकल संकर बीज के फायदे

एकल संकर मक्का की उच्च उत्पादकता एवं उपज के कारण किसानों के बीच इसकी उच्च स्वीकार्यता है। इसकी त्वरित उच्च अंकुरण प्रतिशत एवं पौधें के समान और तेज बढ़वार मक्का की ज्यादा उपज देने में सहायक होते हैं, संकर मक्का न केवल जलवायु परिवर्तन के तहत बेहतर अनुकूल दिखाता है बल्कि यह जैविक और अजैविक तनावों के प्रति भी सहिष्णुता दिखाता है।

एकल संकर मक्का से होने वाले लाभ निम्नांकित है

– उच्च उपज और एकरूपता के कारण किसानों में उच्च स्वीकार्यता।
– अंकुरण का उच्च प्रतिशत और तेज वृद्धि
– बीज उत्पादन के लिए केवल दो माता–पिता की आवश्यकता होती है।
– उनके बीज उत्पादन के लिए कम अलगाव (दुरी/समय) की आवश्यकता होती है।
– अनाजों में प्रतिदिन उत्पादकता की दृष्टि से सर्वाधिक उपज क्षमता है।
– जैविक और अजैविक तनावों के प्रति सहनशील।
– बेहतर जड़ प्रणाली के कारण पानी के दबाव के प्रति तुलनात्मक रूप से अधिक सहिष्णु।
– पोषक तत्व उत्तरदायी और पोषक तनाव की स्थिती में उपज में कम कमी दिखाते हैं।
– एकरूपता और उच्च उत्पादकता के कारण विपणन में आसानी।

भूमि और मिट्टी का चयन

एकल संकर मक्का बीज उत्पादन के लिए उच्च कार्बनिक पदार्थ और ज्यादा जल धारण क्षमता वाली बलुई दोमट मिट्टी अच्छी मानी जाती है। उच्च उत्पादकता के लिए मिट्टी की तटस्थ पीएच (7 के आसपास) होनी चाहिए। बीज उत्पादन अच्छी तरह से पानी निकलने वाले (जहा पानी न जमा हो पाए), खरपतवार और रोग मुक्त मिट्टी और आनुवंशिक शुद्धता बनाए रखने के लिए अधिमानतः ऐसे खेतों में किया जाना चाहिए, जहां पिछली फसल मक्का नहीं थी तथा सिंचाई की उत्तम व्यवस्था हो भूमि में पानी निकास की अच्छी व्यवस्था हो।

बुवाई का उचित समय

बेहतर फसल स्थापन और सफल बीज उत्पादन के लिए बुवाई का समय बहुत महत्वपूर्ण होता है। मक्का सभी मौसमों में उगाया जा सकता है जैसे; खरीफ (मानसून), रबी (सर्दी) और वसंत, लेकिन बीज उत्पादन के लिए 20–35°C, के बीच का तापमान आर्दश माना जाता है। बुवाई की योजना इस प्रकार बनानी चाहिए कि परागण और बीज बनने के दौरान किसी भी प्रकार की प्रतिकुल परिस्थितियों से बचने के लिए फूल आने के समय तेज बारिश न हो, तथा ज्यादा कम (<15°C) या उच्च (>35° C) तापमान न हो। झारखण्ड राज्य के लिए, खरीफ में जून के अंतिम सप्ताह से लेकर जुलाई के पहले सप्ताह के दौरान बुवाई की जा सकती है। जहां रबी में पानी की उपलब्धता है व अवारा जानवरों की समस्या नही है, वहां रबी में नवंबर के पहले से दूसरे सप्ताह के दौरान बुवाई की जा सकती है। संदूषण से बचने के लिए बीज उत्पादन फसल को व्यावसायिक फसल की बुवाई से या तो 200 मीटर की दुरी पर लगाएं या कम से कम 15–20 दिन पहले या बाद में लगाएं।

बीज उपचार

बीज को बीज तथा मृदा जनित रोगों एवं कीट–व्याधियों से बचाने के लिए बुवाई से पहले कीटनाशको एवं कवकनाषियों से उपचारित करना चाहिए। टर्सीकम लीफ ब्लाईट, बैंडेड लीफ एवं शीथ ब्लाईट मेडिस लीफ ब्लाईट आदि के लिए बाविस्टीन +केप्टन 1:1 के अनुपात में मिलाकर उपचारित करना चाहिए। दीमक तथा प्ररोह मक्खी के लिए इमिडाक्लोरपिड 4 ग्राम/किलोग्राम या फिप्रोनिल 4 मि.ली. /किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।

बीज दर

नर और मादा पौधों का बीज दर के आकार/परीक्षण वजन, नरः मादा अनुपात, बुवाई का तरीका और पौधे का प्रकार पर निर्भर करती है। सामान्य तौर पर, कम से कम मादा के लिए इष्टतम बीज दर 15 किग्रा/हेक्टेयर और नर के लिए 6–8 किग्रा/हेक्टेयर है।

बुवाई का तरीका

पौधों की जड़ों को पर्याप्त नमी मिलती रहे और जल भराव से होने वाले नुकसान सं बचाने के लिए यह उचित है कि फसल को मेड़ो पर बोया जाय। रोपण उचित दूरी पर किया जाना चाहिए। इष्टतम पंक्ति से पंक्ति और पौधे की दूरी क्रमशः 60 और 20 सेमी रखी जानी चाहिए। एकसमान गहराई और पौधे से पौधे की दूरी एकरूपी एवं एक समान पौधे का प्रकार देती है। यह प्रति पौधे अधिक उपज के परिणामस्वरूप बीज की उपज को भी बढ़ाता है। नर और मादा की बुवाई विशिष्ट अनुपात में की जानी चाहिए। समान्य तौर पर ज्यादा संकर बीज उत्पादन के लिए नर मादा अनुपात क्रमशः 1:4 या 1:4 रखा जाता है। किसी भी प्रकार के संदूषण से बचने के लिए बीज उत्पादन फसल को व्यावसायिक फसल की बुवाई से या तो 200–400 मीटर की दुरी पर लगाएं या कम से कम 15–20 दिन पहले या बाद में लगाएं। यद्यपि नर पौधे, मादा से भिन्न होते हैं पर किसानों की पहचान के लिए नर पौधें वाली पंक्तियों में पहचान लेबल/टैग लगाना चाहिए। खेत के दोनों तरफ प्रारंभ में पहली पंक्ति हमेशा नर पौधों की होनी चाहिए और बेहतर परागण एवं किसी प्रकार के संदूषण सें बचने के लिए खेत के चारों ओर दो या दो से अधिक पंक्तियों में नर पौधें लगाना वांछनीय है।

पोषण प्रबंधन

सामान्यतः संकर मक्का के नर एवं मादा जनक के पौधे आनुवंशिक रूप से स्वभावतः कमजोर होते है' जिसके कारण इनकी पोषण ग्रहण क्षमता कमजोर होती है एवं धीमी गति से वृद्धि करते है। अतः नर एवं मादा जनक के पौधे को अधिक उर्वरकों की आवश्यकता होती है। मक्का बीज की अधिक उपज के लिए बुवाई से पहले मिट्टी की जॉच करवाना आवश्यक है। बुवाई के 15 दिन पूर्व प्रति हेक्टेयर 15 टन गोबर की खाद का प्रयोग करना चाहिए। नर एवं मादा जनक के पौधो के लिए प्रति हेक्टेयर 180–200 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 80 कि.ग्रा. फास्फोरस, 80 कि.ग्रा. पोटाष तथा 25 कि.ग्रा. जिंकसल्फेट की आवश्यकता होती है। फास्फोरस, पोटाष और जिंक की पूरी खुराक बुवाई के समय दें देनी चाहिए। नाइट्रोजन की कुल मात्रा को पौधे की अलग–अलग अवस्था में देनी चाहिए। नाइट्रोजन की कुल मात्रा का 10 प्रतिशत बुवाई के समय, 20 प्रतिशत चार पत्ती की अवस्था में, 30 प्रतिशत आठ पत्ती की अवस्था में, 30 प्रतिशत पुष्पन की अवस्था में तथा 10 प्रतिशत दाना भरने की अवस्था में देने से बीज की अच्छी पैदावार प्राप्त होती है।

जल प्रबंधन

नर एवं मादा जनक के पौधे के लिए हल्की और बार–बार सिंचाई की जरूरत होती है। सिचाई के दृष्टि से अंकुरण के पश्चात की अवस्था, घुटनों तक उॅचाई वाली अवस्था, पुष्पण का समय, दाना भरने का समय एवं दाना भरने के बाद दश दिन का समय इन पौधों के लिए काफी संवेदनशील होता है जिसमे पानी की सबसे ज्यादा आवश्यकता होती है। अतः इन संवेदनशील अवस्थओं में सिंचाई का जरूर ध्यान रखा जाना चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन

आम तौर पर मक्के में खरपतवार एक गंभीर समस्या है जो मक्के की उपज को 35% तक कम का सकता है। मक्के में खरपतवार प्रबंधन एक महत्वपूर्ण गतिविधि है क्योंकि खरपतवार मक्के के पौधे की

वृद्धि एवं विकास को अवरूद्ध करते हैं। खरपतवार खेत में मौजूद पोषक तत्वों को अवशोषित का लेते हैं जिसके कारण मक्के को पर्याप्त पोषक तत्व की प्राप्ति नहीं हो पाती है। बुवाई के तुरंत बाद और खरपतवार के निकलने के पूर्व एट्राजीन का छिड़काव 600 लीटर पानी में 1.0–1.5 कि.ग्रा. एट्राजीन घोलकर छिड़काव करना चाहिए। एट्राजीन एक चयनित और ब्रॉड स्प्रेक्ट्रम खरपतवार नाशी होने के कारण चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के साथ अन्य प्रमुख घासों को नियंत्रित करता है। बुवाई के १५–२० दिनों के पश्चात एक बार निकाई गुड़ाई करना आवश्यक होता है जिससे खरपतवार निकलने के साथ–साथ जड़ो के पास की मिट्टी भी हल्की हो जाती है जो जड़ों को बढ़ने में मदद करती है। बाद की अवस्थाओं में ज्यादा खरपतवार निकलने पर टेम्बोट्रीऑन 42% SC @100ml a.i/ha का छिड़काव करना चाहिए।

अवांछनीय पौधों को निकालना तथा पौधे सघनता को कम करना (थिनिंग)

थिनिंग अवांछित, भिन्न, गैर–प्रकार एवं रोगग्रस्त पौधे को नर तथा मादा पंक्तियों से हटाने को संदर्भित करता है। सामान्यता, मक्का बीज उत्पादन प्लाटों में अवांछनीय पौधों को कम से कम चार बार निकालना जरूरी होता है। यह बीज की आनुवंशिक शुद्धता को बनाए रखने में मदद करती है। शुरूआती दौर में अर्थात् बुवाई के 12–15 दिन पश्चात अलग से दिखने वाले पौधों को निकाल देना चाहिए तथा एक पौधे से दूसरे पौधे के बीच 20–25 से.मी. दूरी रखी जानी चाहिए ताकि प्रत्येक पौधे को वृद्धि एवं विकास के समान अवसर मिल सकें। पोधे के घुटने तक की ऊँचाई की अवस्था से लेकर फूल आने से पहले की अवस्था तक हमेशा हर पौधे की निगरानी की जानी चाहिए तथा किसी भी प्रकार से भिन्न पौधे को निकाल देना चाहिए। यह भिन्नता पौधे की ऊंचाई, डंठल का रंग और पत्ती का रंग या अन्य किसी प्रकार पर की जा सकती है। फूल निकलने के दौरान फूलों के रंग एवं प्रकार पर भिन्न पौधों की पहचान कर उसे निकाल देना अति महत्वपूर्ण होता है। यह प्रक्रिया नर पंक्तियों में पराग कण निकलने से पहले तथा मादा पंक्तियों में सिल्क निकलने के तुरंत बाद पूरी कर लेनी चाहिए।

नरमंजरी निकालना (डिटेसलिंग)

मादा पौधे के शीर्ष पर नर–असर वाले पुष्प संरचना (नरमंजरी) के भौतिक निष्कासन को डिटैसेलिंग कहा जाता है। संकर बीज बनाने के लिए नर जनक के पराग, (पोलेन) द्वारा मादा जनक के सिल्क का परागित होना जरूरी है। यदि मादा जनक पौधों की टेसल से निकला पराग उसी जनक पौधों के सिल्क को परागित करता है तो संकर बीज नही बनता है। अतः खेत में दो जनकों में से मादा जनक की नरमंजरी को निकाल देना आवश्यक है, तभी इस पौधें का सिल्क दूसरे के पराग से परागित होगा और संकर बीज बनेगा। जब मादा पौधों के नरमंजरी पर्णच्छेद से बिल्कुल बाहर निकल आती है, परन्तु परागकोष से पराग झरना (एंथेसिस) प्रारम्भ नही हुआ होता, उस समय नरमंजरी निकालने का कार्य प्रारम्भ करना चाहिए तथा 14 दिनों तक प्रतिदिन किया जाना चाहिए। बाएं हाथ से बूट पत्ती के नीचे और दाहिने हाथ में नरमंजरी के आधार को पकड़ के इसे बाहर खींचकर निकालना चाहिए। यहाँ ध्यान में रखा जाना चाहिए की मादा पौधों की पूरी नरमंजरी निकाल दी गयी हो। हटाए गए टेसलों को एकत्रित करके पशुओं के पोषक चारे के रूप् में उपयोग किया जा सकता है। निकाले गए नरमंजरी को खेत में नही छोड़ा जाना चाहिए, क्योकि उससे निकले हुए परागकण से संदूषण हो सकता है।

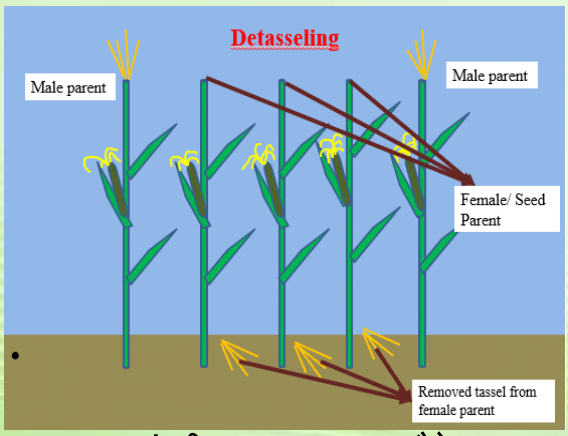

नरमंजरी हटाए हुए मादा पौधे

संकर मक्का बीज उत्पादन फसल

भुट्टों की तुड़ाई

नर और मादा पौधों से भुट्टों की तुड़ाई अलग–अलग की जानी चाहिए। मिश्रण से बचने के लिए मादा की अपेक्षा नर पौधों के भुट्टों की तुड़ाई पहले की जानी चाहिए और इन्हें अलग रखना चाहिए। मादा जनक के भुट्टें से प्राप्त बीज संकर बीज होता है। नर पौधे से तोड़े गए भुट्टे से निकले बीज नर बीज होते हैं जो अगली बार पुनः होने वाले बीज उत्पादन फसल में नर बीज के रूप में उपयोग में लाया जाना चाहिए। जब 75% से अधिक भुट्टें का छिलका सूख जाता है, तब यह कटाई का सबसे अच्छा समय माना जाता है। जब बीज में 20–25% नमी होती है तब भुट्टे की तुड़ाई की जानी चाहिए। तोड़े गए भुट्टे को इक्ट्ठा करने के बजाय फैला देना चाहिए।

भुट्टों को सुखाना

भुट्टे की तुड़ाई के पश्चात इसे धूप में सुखाया जाना चाहिए अन्यथा इसमें फफूंदियों से बीज को नुकसान हो सकता है। धूप में सुखाने के दौरान रोगग्रस्त या भिन्न, गैर–प्रकार के भुट्टों को बाहर निकाल देना चाहिए।

भुट्टों से बीज निकालना (शैलिंग)

भुट्टों को प्रयाप्त सूखाने के पश्चात भुट्टों से दाने निकालने की प्रक्रिया शेलिंग कहलाती है। किसी प्रकार के यांत्रिक मिलावट से बचने के लिए नर की बजाय मादा जनकों की शेलिंग का कार्य पहले किया जाना चाहिए। इसे मानव द्वारा या बिजली चालित शेलर द्वारा किया जा सकता है। बीज में अधिक नमी रहने पर शेलिंग नही करना चाहिए क्योंकि इससे बीज तथा भ्रूण को चोट पहुंचने का खतरा रहता हैं, जिससे बीज की अंकुरण क्षमता प्रभावित हो सकती है। बीजों को निकालने के पश्चात फिर से सुखाना चाहिए ताकि नमी 8% तक हो सके।

प्रसंस्करण और ग्रेडिंग

बीज प्रसंस्करण संकर बीज की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए आवश्यक है। बीज पूरी तरह से सूख जाने पर ही बीज प्रसंस्करण करना चाहिए। इसमें से सभी अंडर–साइज, टूटे हुए, क्षतिग्रस्त और विकृत बीज को हटा दिया जाता है। कटे हुए बीजों के साथ में मोटे और छोटे आकार के बीज हो सकते हैं। बहुत छोटे आकार या बहुत मोटे बीज को ग्रेडर की सहायता से ग्रेड आउट किया जा सकता है।

पैकिंग और लेबलिंग

प्रसंस्करण के बाद बाजार की मांग के अनुसार पैकिंग साइज के अनुसार बीज को पैक किया जाना चाहिए। आम तौर पर बाजार में संकर बीजों के 1 किलो, 2 किलो और 4 किलो के पैक लोकप्रिय हैं। यदि बीजों को कुछ महीनों के लिए भंडारण में रखा जाना है तो पैकिंग का आकार 40 किग्रा बैग हो सकता है। वाणिज्यिक पैक में बीज प्रमाणीकरण नियमों के अनुसार लेबलिंग जानकारी होनी चाहिए। सभी वाणिज्यिक पैक में आवश्यक जानकारी के साथ बीज टैग की संबंधित श्रेणी होनी चाहिए जैसेः आनुवंशिक शुद्धता, अंकुरण प्रतिशत, वैधता अवधि आदि। पैकिंग नमी प्रूफ पॉलीपैक में की जानी चाहिए।

भंडारण तथा विपणन

बीजों को सुखने का कार्य तब तक जारी रखना चाहिए जब तक की बीज में नमी का अंश 8 प्रतिशत तक न हो जाए। इसके बाद बीज को एयरटाइट नमी प्रूफ पॉलीपैक/जूट के बोरो में रखना चाहिए। बीजों का ठंडे व शुष्क स्थान पर भंडारित करना चाहिए तथा कोल्ड स्टोरेज को प्राथमिकता देनी चाहिए। खराब भंडारण के स्थिती में बीजों में शक्ति (विगर) की कमी तथा कम अंकुरण की संभावनाएं रहती है। भंडारण के नुकसान से बचने के लिए भंडारण गोदाम भंडारण कीटों और कृन्तको से मुक्त होना चाहिए।

संकर बीज के नर मादा जनकों के बीज उत्पादन

संकर बीज पुनः उत्पादित करने के लिए उनके नर व मादा जनकों के बीज उपलब्ध होना जरूरी है। आनुवंशिक शुद्धता को बनाए रखने के लिए नर व मादा जनकों को एक दूसरे से या किसी भी अन्य मक्का प्रक्षेत्र या संकर बीज उत्पादन भूखंड से कम 200–400 मीटर की पृथक्करण दुरी अथवा कम से कम 15–20 दिन पहले या बाद में लगाएं। समय अलगाव में यह ध्यान दिया जाना चाहिए की नर और

मादा के पुष्पण एक साथ न आये। सामान्य मक्का उत्पादन की तुलना में नर व मादा जनकों के बीज के उत्पादन में अतिरिक्त देखभाल की आवश्यकता होती है। अच्छी फसल उगाने के लिए उचित प्रबंधन की आवश्यकता होती है। अतिरिक्त यूरिया का प्रयोग और फसल की मांग के अनुसार सिंचाई का प्रबंधन एक साथ सिल्क और नरमंजरी निकलने में मददगार होता है, जिससे ज्यादा से ज्यादा बीज उपज होती है। इसमें भी अवांछित एवं भिन्न पौधे को समय पर निकलना बहुत ही आवश्यक होता है। अच्छी बीज सेटिंग के लिए परागण और बीज बनने के दौरान उचित नमी उपलब्ध होनी चाहिए।

"देश को एक सूत्र में बांधने के लिए एक भाषा की आवश्यकता है।"

- सेठ गोविंददास

मृदा स्वास्थ्य सुधार और सतत कृषि के लिए तकनीकी सुझाव

राहुल मिश्रा[1], धीरज कुमार[1], निशांत कुमार सिन्हा[2], जितेंद्र कुमार[1], मनोज चौधरी[1],
सोमसुंदरम जयरामन[1] एवं अशोक के पात्र[1]

[1]भाकृअनुप– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, गौरिया करमा, हजारीबाग, झारखण्ड– 825405
[2]भाकृअनुप– भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल– 462038

वर्तमान समय में बेहतर मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन से संबंधित जागरूकता की अत्यधिक आवश्यकता है और मृदा स्वास्थ्य को प्रभावी ढ़ग से सुधारने के लिए किसान के खेतो पर सिद्ध तकनीकों की प्रदर्शन कि या की जानी चाहिए। गहन रासायनिक कृषि लंबे समय तक टिकाऊ नहीं होती है। इसलिए, संसाधन कुशल और स्मार्ट कृषि के लिए विवेकपूर्ण मृदा प्रबंधन तकनीकों की वकालत की जानी चाहिए और उन्हें बढ़ावा दिया जाना चाहिए। आईएनएम, अच्छे जल प्रबंधन, बायोचार को शामिल करना, नैनो–उर्वरक, संरक्षण कृषि, कृषि वानिकी, फाइटोरेमेडिएशन, वाटरशेड प्रबंधन दृष्टिकोण, सटीक कृषि आदि की वर्तमान समय में अत्यधिक आवश्यकता है। अब समय आ गया है कि अधिक उपज के साथ–साथ मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों को बढ़ाने, मिट्टी के कटाव को कम करने, जल अंतःस्यंदन में वृद्धि, कार्बन और पानी के पदचिहनों को कम करने, ऊर्जा इनपुट को कम करने और इस तरह गुणवत्ता के साथ समझौता किए बिना पर्यावरण के अनुकूल तरीके से प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

मृदा स्वास्थ्य मानव सभ्यता की आधारशिला है। मिट्टी वायुमेडलीय कार्बन डाइआक्साइड के सबसे बडे सिंक के रूप में कार्य करती हैं, जीवन के सभी प्रारूपों को बनाय रखती है, यह स्वच्छ पानी, खाद्यान्न और स्थिर पारिस्थितिकी तंत्र प्रदान करती है। फ्रेंकलिन रूजवेल्ट ने कहा था की जो राष्ट्र अपनी मिट्टी को नष्ट कर लेता है"। हालांकि, पिक्षले कुछ दशकों से मिट्टी के क्षरण की स्थिति व्यापक स्तर पर देखी जा सकती है। मृदा पारिस्थितिकी तंत्र पर मानवजनित जलवायु परिवर्तन तथा वनों कि कटाई ने मिट्टी की स्थिरता में तीक्ष्ण परिवर्तण किया हैं। इन सभी परिवर्तनों ने वर्तमान संकट से निपटने के लिए वैश्विक समुदाय की सोच में भारी बदलाव लाया है शोधकर्ताओं ने तेजी से जलवायु अनुकूलन कृषि, पुनर्योजी कृषि, प्राकृतिक खेती, संसाधन संरक्षण प्रोद्योगिक, मिट्टी की गुणवत्ता मूल्यांकन के लिए नवीनतम उपकरणों और तकनीकों के उपयोग आदि पर ध्यान केंद्रित किया हैं। अत्याधुनिक विज्ञान और इसके प्रचार–प्रसार पर जोर देने के बावजुद अभी भी इसे अपनाने का प्रचलन बड़े पैमाने पर शुरू नही हुआ है। इसके बड़े पैमाने पर अपनाने में बाधओं की पहचान करने और इस बहुमूल्य मिट्टी को क्षारण से बचाने की आवश्यकता है।

मृदा स्वस्थ्य को बनाये रखने हेतु उपाय

(क) संसाधन संरक्षण प्रोद्योगिकी

दशकों के शोध ने स्पष्ट किया है की मिट्टी के सतह पर फसल अवशेष डालने या बिछाने, न्युनतम जुताई एवम फसल चक्रण, कृषि और पर्यावरणीय लाभ प्रदान करता है (एटवुड एंड वुड,2021)। इन कृषि विज्ञान प्रथाओ को अपनाने पर मिट्टी में कार्बन का भंडारण, पोषक तत्वों का भंडारण करने मृदा क्षरण को कम करने, भौतिक संरचना में सुधार, मिट्टी के सूक्ष्म जीवो के विकाश आदि के लिए अपार अवसर प्रदान करता हैं। संरक्षण कृषि (सीए) तेजी से किसानो द्वारा अपनायी जा रही है क्योकि खेती की यह प्रथा मिट्टी के अच्छी स्वस्थ्य को बनाये रखती एवम बढ़ावा देती है। संरक्षण कृषि का सिद्धांत निन्मलिखित है (चित्र संख्या 1) **(क) फसल चक्रण** : फसल चक्रण अभ्यास उपज में कमी से जुडी समस्याओं जैसे रोग और कीट संक्रमण को खत्म करने में मदद करता है, और मिट्टी में माइक्रोफ्लोराके विविध समुह को पोषक तत्वों की अपुर्ति में सुधार करता है। किसी विशेष मौसम में अधिक फसलें उगाने से, मिट्टी में लचीलापन बनता है और अधिक कार्बन का पृथक्करण किया सकता है। अंतरफसल से फसल खराब होने की संभावना भी कम होती है और आर्थिक लाभ भी प्राप्त होता है। प्रकृतिक संसाधनों के लिए

प्रतिस्पर्धा में अंतर के कारण एक फसल की तुलना में अंतरफसल से ज्यादा लाभ होता हैं (महापात्र, 2011)। **(ख) अवशेष प्रतिधारण:** मिटटी के ऊपरी सतह पर फसल अवशेष द्वारा ढ़कने से, भले ही नियमित फसलें खेत में न हों। यह मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए, मिट्टी को खुला नहीं रखता क्योंकि इससे मिट्टी की संरचना में गड़बडी, अपवाह को

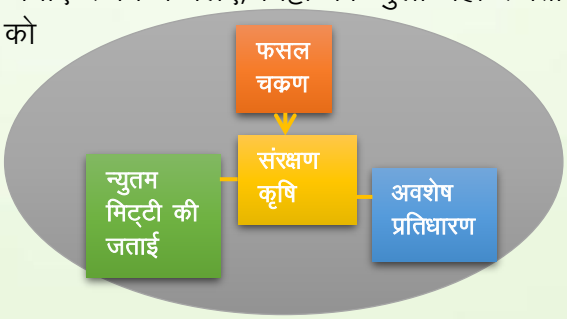

बढ़ावा, मिट्टी का क्षरण, छिद्रों का बंद होना, नमी पोषक तत्वों की कमी होती हैं और जैव विविधता कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त मिट्टी का आवरण खरपतवारों को कम करता है और उपज को बढ़ाता है। **(ग) न्युनतम मिट्टी की जुताई:** मिट्टी की न्युनतम जुताई तीन व्यापक श्रेणियों में उत्पादन प्रणाली की समग्र स्थिरता में मदद करती है: (i) कृषि संबंधि लाभ जो मिट्टी की उत्पादकता में सुधार करते हैं; (ii) आर्थिक लाभ जो उत्पादन क्षमता और लाभप्रदता में सुधार करते हैं; और (iii) पर्यावरण और सामाजिक लाभ जो मिट्टी की रक्षा करते हैं और कृषि को अधिक टिकाऊ बनाते हैं।

संरक्षण कृषि का सिद्धांत

बिना जुताई में फसल की वृद्धि

(ख) प्रेसिजन कृषि : प्रेसिजन कृषि एक प्रौद्यौगिक संचालित कृषि प्रबंधन उपकरण है जौ खेतो में परिवर्तनशीलता को ध्यान में रखते हुऐ संसाधन का उपयोग और कितना संसाधन किस जगह उपयोग है उसकी भविष्यवाणी करता है। आजकल सूचना संचार और प्रौद्योगिकी (आईसीटी) में प्रगति के साथ, मानव रहित हवाई वाहनों (यूएवी) के उपयोग, एप्लिकेटर, इाइपरस्पेक्ट्रल रिमोट सेंसिग को मिट्टी और पौधों आदि में भिन्नता की निगरानी के लिए बहुत प्रभावि ढंग से प्रयोग किया जाता है। अनुबंध फार्मों, सामुदायिक भागिदारी, गैर सरकारी संगठनों आदि के माध्यम से प्रेसिजन कृषि उपकरणों का उपयोग खेती की लागत को कम करने के साथ–साथ छोटे किसानों की आवश्यकताओं को आसानी से पूरा कर सकता है। प्रेसिजन कृषि रसायनों के अनुप्रयोग को कम करने, उत्पादकता बढ़ाने, मिट्टी के नुकसान को रोकने, पानी के कुशल उपयोग, और किसानों की आय बढ़ाने में मदद करता है।

(ग) बयोचार : बायोचार को बंद कंटेनरों में सीमित या बिना ऑक्सीजन वाले उच्च तापमान पर गर्म किया गया बायोमास माना जाता है। बायोचार, उच्च झरझारा संरचना, बढ़ हुआ पीएच,उच्च नमी और पोषक तत्व धारण करने की क्षमता, उच्च कार्बन, अपघटन की कम दर वाले उत्पादित उत्पाद के रुप में होता हैं। इन गुणों ने इसे मिट्टी के स्वस्थ्य में सुधार के लिए एक संभावित स्त्रोत बना दिया। मिट्टी की उर्वरता में सुधार पर बायोचार का प्रभाव काफी हद तक फीडस्टॉक के प्रकार के साथ–साथ पायरोलिसिस तापमान पर भी निर्भर करता है। मृदा पर इसके प्रभाव के आधार पर, बायोचार प्रत्यक्ष रुप से एक नया उर्वरक के रुप में प्रयोग किया जा सकता है। इसके कई लाभों के बावजूद, कुछ शोध इसके नकारात्मक प्रभाव भी बताते है अतः इसके उपयोग में अनिश्चितताएं अभी भी मौजूद हैं।

(घ) नैनो– उर्वरकः लगातार बढ़ती आबादी के लिए सुरक्षित भोजन की वैश्विक मांग को पूरा करना 21वीं सदी में मुख्य चुनौती है। इस मांग को पूरा करने के लिय हमे पर्यावरण के अनुकूल पोषक तत्वों की उपयोग दक्षता में पर्याप्त वृद्धि करने की अवाश्यकता है। नैनो प्रोद्योगिकी उन अग्रणी क्षेत्रों में से एक के रुप में उभरी है जो कृषि के क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में अनुप्रयोग के साथ इन मुद्वों को कुशलतापुर्वक संबोधित कर सकती हैं। नैनो उर्वरक, उर्वरक प्रदुषण को कम करने और पोषक तत्वों के उपयोग की दक्षता बढ़ाने में बहुत महत्वपुर्ण भूमिका निभाते हैं।

(ड.) जैव उर्वरक : जैव उर्वरकों को अक्सर जैव इनोकुलेंट के रूप में माना जाता है क्योंकि उनके पास सूक्ष्मजीवों की जीवित कोशिकाएं होती हैं जो बीज या मिट्टी के माध्यम से इनोक्यूले होने पर पौंधो के पोषक तत्वों का उनके राइजोस्फीयर इंटरैक्शन के माध्यम से कुशल उपयोग करते हैं। जैव उर्वरकों में मुख्य रूप से नील हरित शैवाल (बीजीए), राइजोबियम एज़ोटोबैक्टर, एज़ोस्पिरिलम, फॉस्फेट घुलनशीलता और जैव इनोकुलेंटस (पीएसबी), पौधों की वृद्वि को बढ़ावा देने वाले राइज़ोबैक्टीरिया (पीजीपीआर) शामिल हैं। लाभकारी रोगाणु या तो जैव उर्वरक के रूप में या सहजीवन के रूप में फसल उत्पादन को बनाए रखते हैं। वे पोषक तत्वों को घोलते हैं जिससे यह पौधों को उपलब्ध होता है और इसके अवशोषण में वृद्वि करते है। जैव उर्वरक लागत प्रभावी, पर्यावरण के अनुकूल और गैर विषैल होने के कारण महंगे रासायनिक उर्वरकों के लिए एक अच्छे पूरक के रूप में काम कर सकते हैं।

(च) कृषि वानिकीः कृषि वानिकी को एक भूमि प्रबंधन प्रणाली माना जाता है जो लकडी के बारहमासी और जड़ी–बुटियों के पौधों और या जानवरों को एक स्थानिक व्यवस्था या चक्रण या दोनों में एकीकृत करता है जिसमें पेड और गैर– पेड़ दोनों घटकों के बीच पारिस्थितिक और आर्थिक समनव्य होता हैं। कृषि वानिकी मिट्टी की जैव विविधता को बढ़ावा देने के लिए एक अनुकूल वातावरण बनाता है, साथ ही जमीन के ऊपर और नीचे दोनों हिस्सों में मिट्टी के कार्बन पृथक्करण को बढ़ावा देता है। अध्ययनों से पता चला है कि कृषि वानिकी मिट्टी के संरक्षण और मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार की जबरदस्त क्षमता रखता है। गहरी जड़ें और मिट्टी के बंधन गुणों के कारण कृषि वानिकी के तहत मिट्टी के कटाव को अत्यधिक नियंत्रित किया जाता है, यह जल अंतःस्यंदन, मैक्रो–एग्रीगेट गठन को भी बढ़ावा देता है। कूड़े की मात्रा, उनका अपघटन, पोषक तत्वों का विमोचन,उठाव आदि काफी हद तक पेड़ों के घनत्व, प्रजातियों के प्रकार, वृक्षारोपण की आयु, मिट्टी की स्थिति आदि पर निर्भर करता है। कृषि वानिकी पारिस्थितिकी तंत्र के कामकाज का ख्याल रखेगी और फसल उत्पादकता को बनाए रखेगी।

(छ) एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधनः लंबी अवधि गहन कृषि ने दूसरी पीढ़ी की समस्याओं जैसे मृदा उर्वरता में गिरावट, पोषक तत्वों का असंतुलन और कमियां, जैविक कार्बन की हानि, प्रतिक्रिया अनुपात में गिरावट, आंशिक कारक उत्पादक में गिरावट, जल स्तर में गिरावट और मिट्टी के स्वास्थ्य की समग्र गिरावट को जन्म दिया। आईएनएम का तात्पर्य पोषक तत्वों के अकार्बनिक और जैविक स्त्रौतों के एकीकृत तरीके से प्रबंधन के माध्यम से उत्पादकता के इष्टतम स्तर पर मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखना है। पौधों की वृद्वि को बढ़ावा देने, मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने और फसल उत्पाकता बढ़ाने के लिए पोषक तत्वो के संतुलित उपयोग की आवश्यकता है। लंबे समय तक उर्वक प्रयोगों से प्राप्त परिणाम स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करते हैं कि पोषक तत्वों की असंतुलित खुराक मिट्टी की गुणवत्ता और फसल उत्पादकता को खराब करती है जबकि संतुलित और आईएनएम अभ्यास उपज को बनाए रखने में मदद (चित्र संख्या 3), मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार और मिट्टी की जैव विविधता को बढ़ावा देता है। आईएनएम के प्रमुख तत्वों में जैविक खाद, जैव उर्वरक और अकार्बनिक उर्वरक शामिल हैं। स्वस्थ फसल, उपजाऊ मिट्टी और स्वस्थ वातावरण प्राप्त करने के लिए किसानों के बीच संतुलित और आईएनएम रणनीतियों को बढ़ावा देने की अत्यधिक आवश्यकता हैं।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन और किसान प्रथाओं में फसल वृद्धि

(ज) वाटरशेड प्रबंधनः वाटरशेड प्रबंधन का उद्देश्य भूमि और जल संसाधनों के लिए है और एक ऐसे क्षेत्र में कार्यान्वित किया जाता है जो नदी या धारा के साथ एक परिभाषित बिंदु तक जाता है। वाटरशेड कार्यक्रमों को प्राकृतिक और सामाजिक पूंजी दोनो के विकाश पर ध्यान देने के साथ शुरू किया गया है। इस रणनीति में आवश्यक रूप से भूमि, जल और मानव घटक शामिल हैं। वाटरशेड प्रबंधन कार्यक्रमों का उद्देश्य इन–सीटू जल का संरक्षण, कटाव को रोकना, जल अंतः स्यंदन में वृद्धि, फसल उत्पादकता में सुधार करना है जिससे आजिविका सुरक्षा में वृद्धि हो। जल संरक्षण संरचनाओं के निर्माण के महत्वपूर्ण हाइड्रोलॉजिकल निहितार्थ हैं जिनमें अपवाह में कमी, मिट्टी के कटाव को कम करना, जल अंतः स्यंदन में वृद्धि, चरम प्रवाह भी कम हो जाना शामिल है। वाटरशेड प्रबंधन ने मिट्टी की उर्वरता, मिट्टी और पानी के कटाव, मिट्टी और पानी के संरक्षण, फसल पैटर्न, फसल उत्पादकता, जल तालिका, मानव और जानवरों के लिए पानी को रोकना, आजीविका सुरक्षा पर सकरात्मक प्रभाव डाला हैं। चूंकि वाटरशेड में एक बहु–विषेयक पहलू शामिल है, इसलिए इसके कार्यन्वयन के लिए वैज्ञानिक और नीतिगत हस्तक्षेपों के एक विस्तृत और फोकस समुह की आवश्यकता होती हैं।

(झ) बायोरेमेडिएशनः मिट्टी में भारी धातु प्रदुषन प्राकृतिक प्रक्रियाओं और मानवजनित गतिविधियों दोनों के कारण बढ़ रहा हैं। भारी धातुएं गैर–बायोडिग्रेडेबल होती हैं, इस प्रकार मिट्टी में काफी समय तक बनी रहती हैं, और जैव–आवर्धन के माध्यम से मानव शरीर में प्रवेश करती हैं। इस प्रकार इसने मानव के साथ–साथ पर्यावरण के लिए भी एक गंभीर खतरा उत्तपन्न किया हैं। फाइटोरेमेडिएशन एक ऐसी रणनीति है जिसके माध्यम से, प्रदुषित मिट्टी को कम लागत तथा प्रभावी तरीके से पुनर्जीवित किया जा सकता है। इस दृष्टिकोण में अतिसंचयक पौधे अपनी राइजोस्फेरिक पारिस्थितिकी में माध्यम से अपनी जड़ों का विस्तार करते हैं और कम सांद्रता में भी भारी धातुओं को जमा करते हैं और इस प्रकार प्रदुषित मिट्टी को ठीक करते हैं। बायोरेमेडिएशन उपचार के महत्वपूर्ण तरीके जैसे, फाइटोस्टैबिलाइजेशन, फाइटोएक्स्ट्रक्शन, फाइटोवोल्टालाइजेशन, फाइटोफिल्ट्रेशन, फाइटोडिग्रेडेशन, राइजोडिग्रेडेशन आदि शामिल हैं। फिर भी, संपूर्ण सफाई के लिए एकल रणनीति न तो पर्याप्त और न ही प्रभावी हैं।

"हिंदी भारतीय संस्कृति की आत्मा है।"

- कमला पति त्रिपाठी

कटहल : मूल्य संवर्धन एवं इसकी संभावनाएं

रंजीत सिंह[1], हिमानी प्रिया[1], शिवमंगल प्रसाद[2] एवं विशाल नाथ[1]

[1]भाकृअनुप– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, गौरिया करमा, हजारीबाग, झारखण्ड– 825405

[2] केन्द्रीय उपराउं भूमि चावल अनुसंधान केंद्र (भा.कृ.अनु.प.– रा.चा.अनु.सं.), हजारीबाग

घरेलू स्तर पर पारंपरिक तरीकों से कटहल के मौसम में उनके अपरिपक्व एवं पके हुए फलों से अनेक प्रकार के उत्पाद तैयार करने के प्रयास किये जाते हैं। उपभोक्ताओं एवं उद्यमियों को सालों भर कटहल के कच्चे माल उपलब्ध कराने के लिए कटहल के प्राम्भिक प्रसंस्करण एवं संवर्धन हेतु तुडाई उपरांत वैज्ञानिक तरीकों से संभालने की जानकारी को बढ़ावा देना होगा। यदि उपभोक्ताओं को तुरन्त खाने या पकाने के लिए तैयार सामान के रूप में इस फल को प्रस्तुत किया जा सके तो इसके बाजार एवं वाणिज्यिक संभावनाओं का लाभ लिया जा सकता है और इस अदभुत फल को बर्बाद होने से बचाया जा सकता है।

कटहल दुनियां का सबसे बड़ा फल है और इसे गरीबों के भोजन के रूप में भी जाना जाता है। यह संसार के उष्णकटिबंधीय, उच्च वर्षापात वाले, तटीय एवं आर्द्र क्षेत्रों में पाया जाता है। इसकी मिठास के कारण यह कई लोगों का पसंदीदा फल है। यही सिर्फ एक ऐसा फल है जिसे फल के रूप में कम आँका जाता है लेकिन सब्जी के रूप में ज्यादा (फल+सब्जी)। कटहल की खेती भारत, बांग्लादेश, नेपाल, श्रीलंका, बियातनाम, थाईलैंड, मलेशिया, इंडोनेशिया और फिलीपींस के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में की जाती है। यद्धपि, भारत को इसकी जन्मस्थली के रूप में जाना जाता है, और उत्पादन की दृष्टि से भारत का स्थान प्रथम (178 लाख टन, राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड,– 2021–22) है।

भारत में कटहल का फैलाव दक्षिणी राज्यों जैसे केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक, गोवा तटीय महाराष्ट्र और दूसरे राज्यों जैसे असम, बिहार, त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश, एवं हिमालय के तराईयों में है। यह उच्च विटामिन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, पथ्य रेसा, एंटी ओक्सिडेंट एवं खनिज पोषक तत्वों से भरपूर होता है। मांसल कार्पेल जिसे वानस्पतिक तौर पर पेरियंथ कहा जाता है, ही खाने योग्य भाग है। छिलका, मध्य का कड़ा भाग तथा शिराओं को मिलाकर 55 से 60%, बीज 10 से 15% और लेटेक्स 5 से 10% तक होता है। कटहल से संबंधित उद्योगों के अपशिष्ट के रूप में 45 से 50 प्रतिशत निकल जाता है। कटहल के खाने योग्य भाग तथा अपशिष्टों को मूल्य संवर्धित उत्पादों में परिणत किया जा सकता है।

सब्जी के रूप में इसके उपयोग के अलावा, यह स्वादिष्ट आचार, चिप्स, कटहल चाम एवं पापड़ बनाने में उपयोग के लिए भी मशहूर है। इस फल से अनेक प्रकार के मूल्य संवर्धित उत्पाद जैसे स्क्वैश, जैम, कैंडी, हलवा इत्यादि बनाने की भी संभावना है। इसके पके हुए कोये चीनी की चाशनी में वर्ष भर के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है। थोड़े कम पके परन्तु तैयार कोयों को गर्म पानी से उपचारित करने के बाद सुखाकर वर्ष भर के लिए रखा जा सकता है। इसके बीज स्टार्च का अच्छा स्त्रोत है, जो कटहल के मौसम के दौरान उपयोग में लाया जा सकता है और बहुत ही स्वादिस्ट होता है। इसके बीज के पाउडर से बेकरी उत्पाद में विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थो में एक कार्यात्मक एजेंट के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता है। इससे प्राप्त होने वाली लकडी बहुत ही मजबूत होती है, जिसकी मांग फर्नीचर बनाने के लिए बहुत ज्यादा है। इसके पत्तों से दोने एवं प्लेट भी बनाये जाते हैं।

कटहल में पाये जाने वाले पोषक तत्वों की जानकारी तालिका 1. में दर्शाया गया है

तालिका 1. कटहल के फल का रासायनिक एवं पौषणिक संयोजन (100 ग्राम खाध्य योग्य भाग)

पोषक तत्व	कच्चे फल	पके फल	बीज
पानी ग्राम	76.2 – 85.2	72.0-94.0	51.0 - 64.5
प्रोटीन ग्राम	2.0 - 2.6	1.2 - 1.9	6.6 - 7.04

वसा ग्राम	0.1 - 0.6	0.1 - 0.4	0.40 - 0.43
कार्बोहाइड्रेट ग्राम	9.4 - 11.5	16.0 - 25.4	25.8 - 38.4
रेशा ग्राम	2.6 - 3.6	1.0 - 1.5	1.0 - 1.5
कुल चीनी ग्राम	NA*	20.6	NA*
कुल खनिज ग्राम	0.9	0.8 - 0.9	0.9 - 1.2
कैल्सियम मिली ग्राम	30.0 - 73.2	20.0 - 37.0	50.0
फास्फोरस मिली ग्राम	20.0 - 57.2	38.0 - 41.0	38.0 - 97.0
पोटाशियम मिली ग्राम	287.0 - 323.0	191.0 - 407.0	246.0
सोडियम मिली ग्राम	3.0 - 35.0	2.0 - 41.0	63.2
विटामिन ए (आई यु)	30.0	175.0 - 540.0	10.0 - 17.0
विटामिन सी (मिली ग्राम)	12.0 - 14.0	7.0 - 10.0	11.0
उर्जा (किलो जूल)	50 -- 210	88 -- 410	133--139

स्त्रोत : गुनासेना एवं सदस्य. 1966 : आजाद 2000 : NA*- जानकारी उपलब्ध नहीं

कटहल के फल का मूल्य संवर्धन

कटहल में मूल्य संवर्धन की आपार संभावनाएं हैं। कटहल के फल से 100 से भी ज्यादा उत्पाद इसके कच्चे से लेकर अच्छी तरह से पके हुए अवस्था तक बनाये जा सकते हैं। प्रत्येक उत्पाद का एक अपना स्वाद, मांग एवं भण्डारण करने इत्यादि के गुण हैं। इसके फलों के प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन की संभावनओं के कुछ उदाहारण नीचे तालिका 2 में दिए जा रहे है एवं चित्र. 1 और चित्र. 2 में कटहल के विभिन्न अवस्था और कटहल से मूल्यवर्धित उत्पाद की झलक क्रमशः दिखाया गया है।

तालिका 2. कटहल के फल के मूल्य संवर्धन की संभावनाएं

क्र सं	कटहल फल की अवस्था	मूल्य संवर्धित उत्पाद	संवर्धन में लगने वाली वस्तुएं	उपयोग
1.	अपरिपक्व कोमल	सब्जी बनाने में	तेल, प्याज, टमाटर, पीसी हुई लहसुन, अदरक, धनियाँ, लाल मिर्च, नमक, हल्दी, गरम मसाला	ताजा उपयोग के लिए
2.	अर्ध परिपक्व कोमल	अचार	सरसों का तेल, नमक, विनेगर, सरसों सौंफ, मेथी लाल मिर्च पाउडर, हल्दी पाउडर	संरक्षित कर बाद में उपयोग
3.	अर्ध परिपक्व कोमल भाग	सब्जी बनाने के लिए परिरक्षित करने में	सोडियम हाईपोक्लोराईड, स्टेराईल वाटर	संरक्षित कर बाद में उपयोग के लिए
4.	अर्ध परिपक्व कोमल भाग	पुलाव/बिरयानी	चावल, घी, तेल, नमक, प्याज, इलायची, लौंग, जीरा, पुदीने का पत्ता	ताजा उपयोग के लिए
5.	पूर्ण परिपक्व कोमल भाग	पापड़	जीरा, नमक	संरक्षित कर बाद में उपयोग
6.	पूर्ण परिपक्व कोमल भाग	कटलेट	तेल, मिर्च, नमक, अदरक, प्याज, लहसुन, करी पत्ते	ताजा उपयोग के लिए
7.	पूर्ण परिपक्व कोमल भाग	चिप्स	ब्लान्चिग के लिए पानी, नमक, तेल	संरक्षित कर बाद में उपयोग
8.	पूर्ण परिपक्व कोमल भाग	पकोड़ा	प्याज, हरी, मिर्च, बेसन, तेल, नमक, धनियाँ की पत्ती	ताजा उपयोग के लिए

9.	पके हुए फल	गूदा/ लुगदी	पानी, गुड़, घी	संरक्षित कर बाद में उपयोग
10.	पके हुए फल	हलवा	पानी, चीनी, मैदा, घी, काजू	ताजा उपयोग के लिए
11.	पके हुए फल	गुलाब जामुन	गुदा, मैदा, घी, चीनी, इलायची, पाउडर दूध	ताजा उपयोग के लिए
12.	पके हुए फल	मीठा बड़ा	मैदा, बेकिंग पाउडर तिल, इलायची, नमक	ताजा उपयोग के लिए
13.	पके हुए फल	मिनी अप्पम	इलायची पाउडर, कला तिल नमक नारियल, चावल का आटा	ताजा उपयोग के लिए
14.	पके हुए फल	चाम	पके हुए फल के कोये, ट्रे	संरक्षित कर बाद में उपयोग
15.	पके हुए फल	जैम	चीनी, सिट्रिक अम्ल, पानी	संरक्षित कर बाद में उपयोग
16.	पके हुए फल	कस्टर्ड	दूध, कस्टर्ड पाउडर, चीनी	ताजा उपयोग के लिए
17.	पके हुए फल	शराब	यीस्ट, चीनी, पानी, दालचीनी, पोस्ता दाना, लौंग, जावित्री	संरक्षित कर बाद में उपयोग
18.	पके हुए फल	स्क्वैश	चीनी, सिट्रिक अम्ल, पानी, अन्नानास	संरक्षित कर बाद में उपयोग
19.	पके हुए फल	खीर/पायसम	दूध, गुड, घी, नारियल, चावल का आटा, सूखे मेवे	ताजा उपयोग के लिए
20.	पके हुए फल	चाकलेट	पके हुए फल के कोये, दूध पाउडर, चीनी, बटर, कोको पाउडर	संरक्षित कर बाद में उपयोग
21	पके हुए फल	केक	बेकिंग पाउडर, बेकिंग सोडा, चीनी, नमक, बटर	ताजा उपयोग
22	कटहल के बीज	सब्जी बनाने	तेल, प्याज, टमाटर, पीसी हुई लहसुन अदरक, धनियाँ, लाल मिर्च, नमक, हल्दी, गरम मशाला	ताजा उपयोग के लिए
23	कटहल के बीज	पकोड़ा	प्याज, हरी मिर्च, बेसन, तेल, नमक, करी, पत्ती	ताजा उपयोग के लिए
24	कटहल के बीज	खीर/पायसम	दूध, गुड, घी, नारियल, इलायची	ताजा उपयोग
25	कटहल के बीज	स्टार्च आटा	कटहल के बीज का पाउडर, डिसटिल पानी, 0.1 एन सोडियम हाईड्राक्साईड	संरक्षित कर बाद में उपयोग
26	कटहल के बीज	कटहल का तेल	कटहल के बीज को पेरना	संरक्षित कर बाद में उपयोग
27	नर्म कटहल के छिलके	जैव तेल	नाइट्रोजन गैस, उच्च ताप(4000–600 डीग्री सेल्सियस)	संरक्षित कर बाद में उपयोग

कच्चा कटहल

अपरिक्व कोमल भाग

अर्ध परिक्व कोमल भाग

पूर्ण परिपक्व कोमल भाग

पके हुए फल

कटहल के बीज

कटहल के मूल्य संवर्धन एवं प्रसंस्करण में प्रयुक्त होने वाले मशीन एवं उनके सहायक उपकरण

- हस्त चालित कटहल काटने वाले मशीन : यह सम्पूर्ण कटहल को टुकड़ों के लिए होता है। इसका कीमत प्रति इकाई ₹ 14,000/– है।
- कटहल काटने वाले मशीन (चिप्स के लिए): यह कटहल के कोये को टुकड़ों में काटने के लिए होता है। इसका कीमत प्रति इकाई ₹ 6,000/– है।
- विधुत चालित सुखाने वाला अलमारी : इस मशीन से कटहल के विभिन्न उत्पादों जैसे– चाम, चिप्स, पापड़ इत्यादि को सुखाने के लिए उपयोग में लाया जाता है। इसका कीमत प्रति इकाई ₹ 40,000/– है।
- गीला पीसने वाला मशीन (ग्राईंडर) : इस मशीन से कटहल के कोये तथा बीजों से विभिन्न उत्पाद बनाने के उनको पीसने के लिए उपयोग में लाया जाता है।

कटहल का चमड़ा

कटहल के चिप्स

कटहल का स्क्वैश

कटहल का तेल

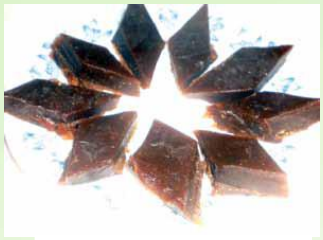

कटहल चॉकलेट

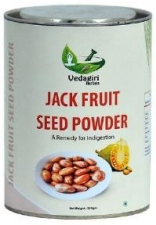

कटहल के बीज का पाउडर

चित्र.2: कटहल से मूल्यवर्धित उत्पाद की झलक

"भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में हिन्दी का योगदान अतुलनीय है।"

- सम्पूर्णानन्द

झारखण्ड में मक्के के फसलों में पोषक तत्व प्रबंधन

प्रीती सिंह[1], संतोष कुमार[1], दीपक कुमार गुप्ता[1], मनोज चौधरी[1],
अशोक कुमार[1], मोना नगरगड़े[2], एवं विशाल त्यागी[2]
[1]भाकृअनुप– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, गौरिया करमा, हजारीबाग, झारखण्ड– 825405
[2]वैज्ञानिक, भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली

मक्का मिट्टी से भारी मात्रा में पोषक तत्व ग्रहण करता है। फसलों को उनके उचित विकास के लिए 18 आवश्यक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। लेकिन मक्का में पोषक तत्व प्रबंधन के बारे में जानकारी की कमी के कारण किसानों को फसलों की उचित उपज नहीं मिल पा रही है। दूसरी ओर केवल यूरिया और डीएपी (नाइट्रोजन और फास्फोरस) के अंधाधुंध उपयोग से मिट्टी और पर्यावरण का स्वास्थ्य भी खराब हो रहा है। इसलिए, पोषक तत्वों की कमी के लक्षणों और एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के तरीकों के बारे में किसानों के ज्ञान को बढ़ाना महत्वपूर्ण है।

मक्का मिट्टी से भारी मात्रा में पोषक तत्व ग्रहण करता है। मक्का की सामान्य किस्म, जिसकी उत्पादकता लगभग 1 टन प्रति हेक्टेयर है, मिट्टी से लगभग 90–100 किलोग्राम पोषक तत्वों को अवशोषित करती है। उन्नत किस्मों के प्रयोग से उत्पादकता 4.0 टन प्रति हेक्टेयर तक पहुंच गई है और इस प्रकार के किस्में मिट्टी से लगभग 200–220 किलो पोषक तत्व अवशोषित करती हैं। एकल क्रॉस संकर किस्मों के प्रयोग से उत्पादकता 7.0 टन प्रति हेक्टेयर तक पहुंच गई है और इस प्रकार की किस्में मिट्टी से लगभग 400–450 किलो पोषक तत्व अवशोषित करती हैं । लेकिन मक्का में पोषक तत्व प्रबंधन के बारे में जानकारी की कमी के कारण किसानों को फसलों की उचित उपज नहीं मिल पा रही है। दूसरी ओर केवल यूरिया और डीएपी (नाइट्रोजन और फास्फोरस) के अंधाधुंध उपयोग से मिट्टी और पर्यावरण का स्वास्थ्य भी खराब हो रहा है। इसलिए, पोषक तत्वों की कमी के लक्षणों और एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के तरीकों के बारे में किसानों के ज्ञान को बढ़ाना महत्वपूर्ण है।

किसानों को हमेशा याद रखने वाले महत्वपूर्ण बिंदु

- मिट्टी में या फसलों पर उर्वरक का उपयोग फसलों के प्रकार, मिट्टी के प्रकार और प्रबंधन के प्रकार (सिंचित या असिंचित प्रणाली) पर निर्भर करता है।
- कृषि विशेषज्ञ के परामर्श से सही मात्रा में सही उर्वरक चुनें और सही समय पर सही जगह पर उपयोग करें।
- पोषक तत्वों की कमी के लक्षणों की पहचान करने का तरीका जानने का प्रयास करें ।
- 100 किग्रा यूरिया = 46 किग्रा नाइट्रोजन
- 100 किलो डीएपी = 18 किलो नाइट्रोजन और 46 किलो फास्फोरस
- 100 किग्रा म्यूरेट पोटाश (एम ओ पी) = 60 किग्रा पोटाशियम

फसलों को उनके उचित विकास के लिए 18 आवश्यक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। कुछ पोषक तत्वों की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है जबकि अन्य पोषक तत्वों की कम मात्रा में। जिन पोषक तत्वों की बड़ी मात्रा में आवश्यकता होती है उन्हें मैक्रो पोषक तत्व (नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम और सल्फर) के रूप में जाना जाता है। जबकि पोषक तत्व जिनकी बहुत कम मात्रा में आवश्यकता होती है, सूक्ष्म पोषक तत्व कहलाते हैं। इसलिए, फसलों की अच्छी पैदावार के लिए नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश के अतिरिक्त सूक्ष्म पोषक तत्वों की भी आवश्यकता होती है। सूक्ष्म पोषक तत्वों की संख्या आठ हैः जस्ता, तांबा, लोहा, मैंगनीज, बोरॉन, मॉलिब्डेनम, निकल एवं क्लोरीन। इनमें जस्ता, लोहा एवं बोरॉन का प्रमुख स्थान है। लेकिन केवल नाइट्रोजन और फास्फोरस (यूरिया और डीएपी) के उपयोग से मिट्टी सूक्ष्म पोषक तत्वों में कम होती जा रही है और फसल की उपज भी कम हो रही है। साधारणतः इन सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी अधिक उपज देने वाली फसलों के प्रभेदों का फसलचक्रों में

समावेश, गहन खेती, रासायनिक उर्वरकों के असन्तुलित प्रयोग एवं जैविक खादों की उचित मात्र मृदा में नहीं डालने के कारण हो रहा है

मक्के में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण एवं आपूर्ति

नाइट्रोजन

यह पौधे के तने, शाखाओं एवं पत्तों के स्वास्थ्य एवं वृद्धि में सहायक है। मृदा में इसकी अधिकता से पौधे बढ़कर गिर जाते हैं, रोगों एवं कीटों का प्रकोप बढ़ जाता है, दाने कम लग पाते हैं तथा विलंब से पकते हैं। इसकी कमी से पौधों की वृद्धि रुक जाती है। हल्के हरे रंग के नीचे के पत्ते फीके पीले रंग से लेकर भूरे रंग के हो जाते हैं। डंठल एवं तना छोटे और पतले हो जाते हैं।

मक्का के लिए नाइट्रोजन की अनुशंसित मात्रा

खरीफ मक्का

सिंचित 150 किग्रा प्रति हेक्टेयर

बारानी 90 से 100 किग्रा प्रति हेक्टेयर

रबी मक्का

सिंचित 150 किग्रा प्रति हेक्टेयर

नाइट्रोजन का स्रोत युरिया, डी ए पी, गोबर खाद, हरि खाद, केंचुआ खाद

नाइट्रोजन डालने का समय

नाइट्रोजन की पर्याप्त आपूर्ति प्राप्त करने के लिए, नाइट्रोजन को आमतौर पर बुवाई के समय, घुटने की ऊँची अवस्था और प्री–टैसेलिंग अवस्था में तीन बराबर भागों में लगाया जाता है।

गैर–रेतीली मिट्टी में, नाइट्रोजन की समान आपूर्ति भी दो समान उपयोग द्वारा पूरी की जा सकती है – बुवाई के समय 50: और घुटने की ऊँचाई पर शेष आधा।

फॉस्फोरस

यह पौधों की जड़ों की वृद्धि में सहायक है एवं दानों को पुष्ट करता है। फॉस्फोरस आवश्यकता से अधिक नाइट्रोजन के हानिकारक प्रभावों को भी दूर करता है तथा कीटों एवं रोगों के प्रकोप को रोकता है। फसलें समय पर पकती हैं। इसकी कमी से गहरे हरे रंग का पौधा बैंगनी रंग, जो बाद में स्याहीयुक्त तथा लाल रंग में बदला जाता है।

मक्का के लिए फॉस्फोरस की अनुशंसित मात्रा

झारखंड के प्रमुख मक्का उत्पादक क्षेत्रों के लिए P_2O_5 अनुशंसाएँ इस प्रकार हैं:

खरीफ मक्का: सिंचित – 75 किलो/ हेक्टेयर

बारानी – 50 किलो/हेक्टेयर

रबी मक्का: 50 से 60 किलो/हेक्टेयर

फॉस्फोरस का स्श्रोतः डी ए पी, सिंगल सुपर फोसफेत, डबल सुपर फोसफेत, गोबर के खाद, हरि खाद, केंचुआ खाद

फॉस्फोरस डालने का समय

चूंकि यह जड़ विकास में प्रमुख भूमिका निभाता है, इसलिए फॉस्फोरस की पूरी खुराक प्रारंभिक अवस्था में ही दी जानी चाहिए।

पानी में इसकी कम घुलनशीलता के कारण, इसे नम क्षेत्र में लगाया जाना चाहिए ताकि पौधे द्वारा जल्दी अवशोषण के लिए इसे जल्दी से रूपांतरित किया जा सके।

बीज (बैंड प्लेसमेंट) के नीचे प्लेसमेंट के रूप में एकल खुराक में इसका आवेदन अत्यधिक वांछनीय है।

पोटाश

यह पौधों में चीनी एवं मांड (स्टार्च) बनाने की प्रक्रिया में सहायक होता है। इसके साथ ही उनमें प्रतिकूल मौसम एवं कीटों तथा व्याधियों से बचने की क्षमता में वृद्धि लाता है। इसके अलावा पौधों में तना

एवं डंठलों को मजबूत बनाता है। इससे पौधों में जलधारण की क्षमता बढ़ जाती है। इसकी कमी के कारण नीचे के पत्तों पर निर्जीव रेशे के धब्बे, चितकबरे या पीले होते हैं या फिर इनमें हरेपन की कमी होती है। इन मुख्य पोषक तत्वों की आपूर्ति जैविक खादों एवं रासायनिक उवर्रकों द्वारा की जाती है। पके फसल के लिए अलग–अलग मात्रा में पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है।

मक्का के लिए पोटेशियम की अनुशंसित मात्रा : मक्का उगाने वाली अधिकांश मिट्टी में पोटेशियम की कमी नहीं पाई जाती है। हालांकि, बीज से थोड़ी दूरी पर 30–40 किग्रा/हेक्टेयर आम तौर पर काफी पर्याप्त होता है। इसमें लीचिंग की मात्रा नगण्य होती है और अधिकांश उठाव जल्दी पूरा हो जाता है, पूरे पोटेशियम को बुवाई के समय फॉस्फोरस के साथ बेसल खुराक के रूप में डालना होता है।

पोटेशियम का श्रोतः एम ओ पी, गोबर क खाद, हरि खाद, केंचुआ खाद

कैल्शियम

कैल्शियम कोशिका विभाजन, कोशिका विस्तार, कोशिका भित्ति के निर्माण, रंध्र नियमन और शीत सहनशीलता में महत्वपूर्ण है। अन्य पोषक तत्वों के विपरीत, कैल्शियम की कमी आमतौर पर पौधों के विकास बिंदुओं और युवा पत्तियों को प्रभावित करती है। युवा पत्ते अक्सर मुड़ या झुर्रीदार होते इसके लक्षण नई पत्तियों से शुरू होते हैं। पत्ती की युक्तियाँ हल्के हरे या सफेद धब्बे या लकीर के निशान दिखाती हैं और अक्सर पीछे की ओर झुकी होती हैं। यदि फूल आने के दौरान कैल्शियम उपलब्ध न हो तो फूलों या फूलों की कलियों का गर्भपात होना आम बात है।

सुधार उपाय : झारखंड की मिट्टी अम्लीय है, इसलिए मिट्टी में कैल्शियम की कमी है। लाल मिट्टी में अनुशंसित मात्रा में चूना डालें। चूना लगाने से फसलों को कैल्शियम भी मिलता हैयदि पौधों में कैल्शियम की कमी के लक्षण हों तो कैल्सियम सल्फेट के 2 प्रतिशत घोल का पत्तियों पर दो बार छिड़काव करें।

मैग्नीशियम

मैग्नीशियम क्लोरोफिल (प्रकाश संश्लेषण का वर्णक) का एक मुख्य घटक है। मैग्नीशियम एंजाइम और सह–कारक प्रतिक्रियाओं में भी महत्वपूर्ण है। यह चयापचय और कार्बोहाइड्रेट की गति और कोशिका झिल्ली को स्थिर करने में शामिल है। पत्तियां उन्नत अंतःशिरा क्लोरोसिस, परिगलित किनारों को दर्शाती हैं। गंभीर मामलों में यह इंटर्नोड्स को छोटा कर देता है।

सुधार उपाय :यदि पौधों में मैग्नीशियम की कमी के लक्षण हों तो मैग्नीशियम सल्फेट के 2 प्रतिशत घोल का पत्तियों पर छिड़काव करें।

गंधक

प्रोटीन संश्लेषण में सल्फर आवश्यक है क्योंकि यह कुछ आवश्यक अमीनो एसिड जैसे सिस्टीन और मेथियोनीन का एक घटक है। सल्फर पौधों के प्रकाश संश्लेषण और श्वसन में भी शामिल है। पौधों में सल्फर की कमी के लक्षणरू प्रारंभ में, हल्के हरे–पीले रंग का एक समान क्लोरोसिस युवा और परिपक्व पत्तियों के बीच कहीं भी विकसित होता है, लेकिन शायद ही कभी निचली, पुरानी पत्तियों पर होता है। जैसे–जैसे लक्षण बढ़ते हैं, एक समान क्लोरोसिस पत्ती के शेष भाग में फैल जाता है।

सुधार उपाय : मैग्नीशियम सल्फेट के 2 प्रतिशत घोल का पत्तियों पर छिड़काव करें।

लोहा

आयरन सल्फर प्रोटीन का एक महत्वपूर्ण घटक है। लोहे की कमी वाले वातावरण में डीएनए और आरएनए संश्लेषण कम हो जाता है। आयरन क्लोरोफिल के निर्माण में भी शामिल है। लोहे को पौधे में एक अचल तत्व माना जाता है, और इसके परिणामस्वरूप, पौधों में लोहे की पोषण की कमी के लक्षण युवा पत्तियों और अंकुरों पर विकसित होते हैं। पौधों में आयरन की कमी के लक्षणः आम तौर पर युवा पत्तियों में आधार से अंतःस्रावी क्लोरोसिस विकसित होता है, लेकिन कुछ में सिरे से। समय के साथ,

इंटरवेनल क्लोरोसिस तेज हो जाता है और पैटर्न कम इंटरवेनल हो जाता है। यहां तक कि तना भी क्लोरोटिक दिखाई देता है। इस बिंदु पर, क्लोरोटिक लक्षण अपरिवर्तनीय हैं, भले ही सुधारात्मक उपाय किए गए हों। अंत में, पीला सफेद में बदल जाता है। Fe की जैव–उपलब्धता pH पर निर्भर है; पीएच जितना कम होगा घुलनशीलता उतनी ही अधिक होगी और इसलिए पौधों के लिए लोहे की क्षमता बढ़ जाएगी।

सुधार उपाय : झारखंड में लाल मिट्टी की उपस्थिति के कारण आमतौर पर मिट्टी में लोहे की कमी नहीं होती है। हालांकि, अगर कमी के लक्षण हैं तो साप्ताहिक अंतराल पर 20–25 किलोग्राम/हेक्टेयर $FeSO_4$ या 1%$FeSO_4$ का पर्ण छिड़काव करें

मैंगनीज

प्रकाश संश्लेषण में मैंगनीज महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पानी के बंटवारे के दौरान मुक्त कणों का निर्माण और अंततः ऑक्सीजन की रिहाई Mn मुक्त वातावरण में संभव नहीं है। Mn एकमात्र ऐसा तत्व है जो इस जैव–रासायनिक प्रक्रिया के लिए आवश्यक इलेक्ट्रॉनों का योगदान कर सकता है। पुरानी या छोटी पत्तियों पर परिगलन होता है। कोब का विकास अनियमित होगा, जिसमें अक्सर खाली युक्तियाँ या विविध कर्नेल आकार, साथ ही मुड़े हुए कॉब्स दिखाई देंगे। युवा और हाल ही में परिपक्व पत्तियों में क्लोरोसिस विकसित होता है, जिसके बाद हाल ही में परिपक्व पत्तियों पर नेक्रोसिस की स्टिपलिंग होती है। प्ररोह और जड़ की वृद्धि में भारी कमी आम है।

सुधार उपाय : $MnSO_4$ के 2 प्रतिशत घोल का पत्तियों पर छिड़काव करें।

जस्ता

जिंक प्रोटीन का एक अभिन्न अंग है। प्रोटीन संश्लेषण के लिए जिंक की आवश्यकता होती है।यह पौधों के अंदर इंडोल एसेटिक एसिड नामक हार्मोन का निर्माण करने एवं उनकी वृद्धि में सहायता करता है और प्रोटीन की मात्र को भी बढ़ाता है।

सुधार के उपाय :हर तीन से चार मक्के की कटाई के बाद जिंक सल्फेट का 20–25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बुआइ के समय अनुप्रयोग आवश्यक हो जाता है। विकास के बाद के चरणों में 5% $ZnSO_4$ के पत्तेदार आवेदन द्वारा आधे मात्रा में चूने के साथ पानी में घोलकर ठीक किया जा सकता है।

बोरॉन

यह पौधों का एक आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व है और पौधों के भीतर शर्करा के स्थानांतरण को बढ़ाता है। बोरॉन परागण तथा प्रजनन क्रिया एवं कोशिका विभाजन में मदद करता है। यह पौधों में पुष्प, फल तथा बीज बनने की क्रिया को सम्पादित करता है। बोरॉन की कमी को बोरेक्स या सुहागा द्वारा पूरा करते हैं। चूनायुक्त तथा भारी मृदाओं में बुआई के समय 15–16 कि.ग्रा. बोरेक्स प्रति हेक्टेयर की दर से मृदा में मिलाकर बीजों की बुआई करनी चाहिए। चूनारहित हल्की बलुई मृदा में 10–15 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर बोरेक्स का अनुप्रयोग करना चाहिए। इससे फसलों की उपज में वृद्धि होती है। अधिकांश फसलों को 15–16 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर बोरेक्स की आवश्यकता होती है। लक्षण इंटर्नोडल के छोटे होने और पारदर्शी परिगलित धब्बों के रूप में व्यक्त किए जाते हैं। बोरॉन की कमी के परिणामस्वरूप छोटे कॉब्स होंगे।

सुधार उपाय : पखवाड़े के अंतराल पर बोरेक्स 0.5% का पर्ण छिड़काव करें।

मक्का में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन

हाइब्रिड मक्का पोषक तत्वों के अनुप्रयोग के लिए बहुत ही संवेदनशील है और उच्च उपज क्षमता के कारण अन्य अनाज की तुलना में पोषक तत्वों की आवश्यकता थोड़ी अधिक है। इसे जैविक रूप से या एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन द्वारा उगाया जा सकता है।

जैविक पोषक तत्व प्रबंधनरू जैविक मक्का उत्पादन में पोषक तत्व प्रबंधन के लिए उपयुक्त संयोजन में उपलब्धता के आधार पर उपयोग किए जाने वाले विकल्पः

हरी खादः हरी खाद वाली फसलें जैसे ढैंचा/सनहेम्प/लोबिया क्रमशः 12, 20, 20 किलोग्राम बीज/एकड़ की दर से बहुत उपयोगी होती हैं। 40–50 दिन पुरानी फसल को जोतकर 10 दिन के लिए खेत को मक्के की बुवाई से पहले सड़ने के लिए रख देना चाहिए। ग्रीष्म मूँगबीन/लोबिया के भूसे को मक्का की बुवाई से पहले गाड़ दिया जा सकता है ।

गोबर खाद/कम्पोस्टः 6 टन/एकड़ अच्छी तरह से विघटित फार्म यार्ड खाद या वर्मीकम्पोस्ट @ 3 टन/एकड़ आवश्यक है।

बीज उपचारः पीएसबी और एनपीके कंसोर्टिया के साथ एजैटोबैक्टर/एजोस्पिरिलम के साथ बीज उपचार @200 ग्राम प्रत्येक /एकड़ या तरल सूत्रीकरण @200 ग्राम/एकड़ या तरल सूत्रीकरण @100 मिली/एकड़ बेहतर नमी बनाए रखने और फसल की प्रारंभिक वृद्धि के लिए आवश्यक है ।

जैव उर्वरकः पीएसबी, वीएएम और एनपीके कंसोर्टिया @5–6 किग्रा/एकड़ के साथ एजैटोबैक्टर एजोस्पिरिलम का मिट्टी में उपयोग करना चाहिए।

धान/गेहूं/मक्का पुआल खादः 0.18 टन/एकड़।

उपयुक्त उर्वरकों के उपयोग के माध्यम से फसल की स्थूल और सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है ।

उर्वरक की निम्नलिखित अनुसूची का उपयोग किया जा सकता है।

फसल चरण उर्वरक समय–निर्धारण

- बुवाई (बेसल)– N–उर्वरक की 1/3 खुराक, P, K एवम सूक्ष्म पोषक तत्व की पूरी खुराक दें।
- नी–हाई (पहला विभाजन) – टॉप ड्रेस 1/3 N–उर्वरक खुराक और सूक्ष्म पोषक तत्व स्प्रे।
- प्री–टैसेलिंग (दूसरा विभाजन) – शेष 1/3 N–उर्वरक खुराक और सूक्ष्म पोषक तत्व स्प्रे की टॉप ड्रेसिंग।

फायदेः

- फसल की आवश्यकता और देशी और अनुप्रयुक्त स्रोतों से पोषक तत्वों के बीच संतुलन बनाए रखता है।
- पर्यावरण के अनुकूल उर्वरकों को शामिल करके मिट्टी की अखंडता और भौतिक–रासायनिक प्रकृति को बढ़ाता है।
- कार्बन फुट प्रिंट और ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करता है।
- अनुप्रयुक्त और देशी पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाकर उत्पादकता में सुधार करता है।

उर्वरकों का प्रयोग

- जहां तक संभव हो मिट्टी परीक्षण की सिफारिश के अनुसार एनपीके उर्वरकों का प्रयोग करें।
- रिज रोपित फसल के मामले में, रिज के किनारे पर 6 सेमी गहरा, रिज के शीर्ष से दो तिहाई दूरी पर एक कुंड खोलें।
- उर्वरक मिश्रण को खांचे के साथ समान रूप से लगाएं और 4 सेमी की गहराई तक मिट्टी से ढक दें।
- यदि रोपण की क्यारी प्रणाली का पालन किया जाता है, तो 60 सेमी की दूरी पर 60 सेमी गहरी खांचे खोलें।
- उर्वरक मिश्रण को खांचों के साथ समान रूप से रखें और 4 सेमी की गहराई तक मिट्टी से ढक दें।
- जब एजोस्पिरिलम का उपयोग बीज और मिट्टी के आवेदन के रूप में किया जाता है, तो 100 किलो एन/हेक्टेयर (मिट्टी परीक्षण द्वारा अनुशंसित कुल एन पर 25% की कमी) उपयोग करें।

नैनो यूरिया

- नव विकसित नैनो यूरिया के छिड़काव से भी नाइट्रोजन की आवश्यक मात्रा की आपूर्ति की जा सकती है
- एक लीटर पानी में 2–4 मिली नैनो यूरिया (4%) मिलाएं और सक्रिय विकास के चरणों में फसल के पत्तों पर स्प्रे करें।
- पहला स्प्रेः अंकुरण के 30–35 दिन बाद या रोपाई के 20–25 दिन बाद
- दूसरा स्प्रेः पहली स्प्रे के 20–25 दिन बाद या फसल में फूल आने से पहले।
  - नोट – डीएपी या जटिल उर्वरकों के माध्यम से आपूर्ति की जाने वाली बेसल नाइट्रोजन को न काटें।
- नैनो यूरिया के छिड़काव की संख्या फसल, इसकी अवधि और समग्र नाइट्रोजन आवश्यकता के आधार पर बढ़ाई या घटाई जा सकती है।

"भाषा विचारों की प्रेरणा है।"

- डॉ. जॉनसन

धान के प्रमुख रोग एवं प्रबंधन

आशा कुमारी[1], चन्दन महाराणा[2] एवं कृष्णकांत मिश्रा[2]

[1]भाकृअनुप– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, गौरिया करमा, हजारीबाग, झारखण्ड– 825405

[2]भाकृअनुप – विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा ,उत्तराखंड–263601

धान खरीफ की एक मुख्य फसल है जिसे सिंचित और असिचिंत दोनों अवस्थाओं में बोया जाता है। धान की अच्छी पैदावार लेने के लिए कई बातों का ध्यान रखना आवश्यक है जैसे कि खेत की अच्छी तैयारी, उन्नत किस्मों का प्रयोग, सिंचाई, खादों का संस्तुति अनुसार प्रयोग तथा इसमें लगने वाले रोगों की रोकथाम। धान में लगने वाले मुख्य रोगों में झोंका अथवा प्रध्वंस, भूरी चित्ती, पर्णच्छद विगलन, पर्णच्छद अंगमारी, आभासी कंड, दानों का बदरंगापन एवं खैरा रोग मुख्य है।

झौंका रोग

धान में सर्वाधिक हानि पहुंचाने वाला रोग है। यह रोग पत्ती, बालियों व तने की गांठो में लगता है। पत्तियों में प्रारम्भिक अवस्था में छोटे पिन के सिरे के बराबर धब्बे बनते जाते हैं जो बाद में आँख या नाव का आकार ले लेते हैं। यह धब्बे किनारों में भूरे तथा बीच में राख के रंग के होते हैं। ये धब्बे आपस में मिलकर पूरी पत्ती को झुलसा देते हैं एवं फसल जली हुई दिखाई देती है। रोग की इस अवस्था को पत्ती का झोंका रोग कहते हैं। दूसरी अवस्था में यह रोग गर्दन, पुष्पक्रम एवं गांठो पर लगता है।बालियों के निचले भाग पर धूसर बादामी या काले क्षतस्थल बन जाते हैं, जिससे यह भाग सड़ने लगता है। बालियों के निचले भाग या गर्दन के सड़ जाने से पूरी बाली टूट जाती है। तने की गांठें इस रोग के प्रभाव से काली पड़ने लगती है और थोड़ी हवा चलने पर टूट जाती है।

रोकथाम : इस रोग की रोकथाम के लिये रोग प्रतिरोधी या सहनशील किस्मों को लगाना सर्वोत्तम उपाय है। इन किस्मों में वी.एल. धान 154, वी.एल. धान 221, वर्षा पर आधारित खेती के लिये एवं सिंचित अवस्था में रोपित धान के लिए वी.एल. धान 61, विवेक धान 62, विवेक धान 82, विवेक धान 85 आदि संस्तुत की गई हैं। उर्वरकों, विशेषकर नत्रजन का संतुलित प्रयोग करना चाहिए तथा खेत के आसपास सफाई रखनी चाहिये। कार्बेन्डाजिम अथवा एडिफेनफास दवा का (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव करें। कम प्रकोप में मैंकोजेब (75 प्रतिशत डब्ल्यू.पी.) दवा के 0.25 प्रतिशत घोल का छिड़काव भी प्रभावी रहता है। ट्राइसाइक्लाजोल (75 प्रतिशत डब्ल्यू.पी.) की 0.6 ग्रा. मात्रा का एक लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से रोग की उग्रता में काफी कमी आ जाती है।(चित्र–1)

चित्र–1: **झौंका रोग के लक्षण**

भूरी चित्ती रोग

भूरी पर्ण चित्ती रोग धान की पत्तियों व दानों में लगने वाला दूसरा मुख्य रोग है। इस रोग में पत्तियों एवं पर्णच्छद पर अण्डाकार या गोलाकार भूरी चित्तियॉ बन जाती है। ऐसी चित्तियों के बीच का रंग धूसर होता है। दानों पर भी इस रोग के लक्षण दिखाई देते हैं। अतः बुवाई के लिए हमेशा स्वस्थ्य बीजों का उपयोग करना चाहिए और जरूरत हो तो बीजों को फफूँदीनाशक दवा से उपचारित कर लेना चाहिए। इस रोग का प्रकोप कमजोर उर्वरता वाले खेतों में अधिक पाया जाता है। ब्लास्ट रोग

में सुझाई गई किस्मों पर इस रोग का प्रकोप कम होता है। उर्वरकों की संस्तुत मात्राा का प्रयोग इस रोग के नियंत्राण में सहायक है।

रोकथाम : इस रोग का नियंत्रण के लिय रोगरोधी अथवा सहनशील किस्मों को लगाना चाहिए। नत्रजन की कमी से इस रोग की उग्रता बढ़ जाती है अतः अनुमोदित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग करें। स्वस्थ फसल में इस रोग का प्रकोप कम होता है। थिरम (75ः डब्ल्यू.एस.) से 2.5–3.0 ग्रा./कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें। खड़ी फसल में मैंकोजेब (75ः डब्ल्यू.पी.) का 2.5 ग्रा./ली. पानी में घोल (एक नाली के लिये 40 ग्रा. दवा का 15 ली. पानी में घोल) बनाकर आवश्यकतानुसार 8–10 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें। खेत के खरपतवारों को नष्ट कर दें, इन पर रोगकारक पनपते हैं।(चित्र–2)

चित्र–2ः भूरी चित्ती रोग

आभासी कंड

महत्वपूर्ण रोग जो धान में नुकसान करता है वह है–आभासी कंड। इस रोग में बालियों के कुछ ही दाने रोगग्रस्त होते हैं। रोगी दाने पीले हरे या हरापन लिए पीले रगं के और बाद में जैतूनी–काले से गोलों में बदल जाते हैं। ऐसे गोलों में बीजाणु प्रचुर मात्राा में विद्यमान होते हैं। उन्नत किस्मों में यह रोग कम लगता है। जिन इलाकों में यह रोग अधिक लगता है और अधिकांश वर्षो में लगता है वहॉ फूल आने के दौरान मॉकोजेब 2.5 ग्रम प्रति लीटर पानी अथवा कॉपर आक्सीक्लोराइड की 3 ग्राम मात्राा प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करना लाभकारी होता है। (चित्र–3)

चित्र–3ः आभासी कंड रोग के लक्षण

खैरा रोग

आपने धान की फसल मे जिंक तत्व की कमी के लक्षण भी देखे होगें जिसे खैरा रोग के नाम से जाना जाता है। इस रोग के मुख्य लक्षण हैं–पत्तियों की मध्य सिरा का रंगहीन या हल्के रंग का हो जाना तथा पत्तियों का रंग भूरा लाल हो जाना। फसल पर इस रोग के लक्षण दिखाई देने पर 5 ग्राम जिंक सल्फेट एवं 25 ग्राम यूरिया या यूरिया की जगह 2.5 ग्राम चूना प्रति ली0 पानी में घोलकर फसल पर छिड़कें। (चित्र–4)

चित्र–4: खैरा रोग के लक्षण एवं प्रभाव

विभिन्न फसलों को रोग–ब्याधियों से बचाने के लिये खेत की तैयारी से लेकर फसल पकने तक उचित सस्य क्रियाएं अपनाएं एवं रोग के लक्षण दिखाई देने पर नियंत्रण के उपाय अपनाएं। कुछ बातें जरूर ध्यान रखें :

- रोगराधी व सहनशील, उन्नत किस्मों का शुद्ध व प्रामाणिक बीज लगाएं।
- बीजों को उपचारित जरूर करें।
- फसल में संस्तुत उर्वरकों का प्रयोग करें।
- खेत में पानी की निकासी का उचित प्रबंध करें।
- रासायनिक दवायें खरीदते समय, उनके उपयोग की अंतिम तिथि (एक्सपाइरी डेट) जरूर देखें एवं दवा का संस्तुत मात्राा में प्रयोग करें। दवा का घोल बनाते समय 15–20 लीटर पानी प्रति नाली जमीन के हिसाब से प्रयोग करें तथा इसमें चिपकने वाले पदार्थ जैसे ट्रिटान या टीपाल 1 मिली प्रति लीटर पानी में अवश्य मिलाएं। इससे हल्की बारिश होने पर भी दोबारा छिड़काव की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

'भारतीय भाषाएं नदियां हैं और हिन्दी महानदी'

- रवीन्द्र नाथ टैगोर

धान की परती भूमि में दलहन खेती को प्रोत्साहित करने में सहभागी फसल चयन की भूमिका

अनिमा महतो एवं मोनू कुमार
भाकृअनुप– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, गौरिया करमा, हजारीबाग, झारखण्ड– 825405

झारखंड भारत के पूर्वी भाग में स्थित एक ऐसा राज्य है, जो कि इसकी पठारी भूमि, लाल मिट्टी तथा शुष्क जलवायु के लिए विख्यात है। यहाँ की कृषि मुख्यतः धान की एकल कृषि पर आधारित है, तथा धान की कटाई के बाद यहाँ लगभग 1.0 लाख हेक्टेयर भूमि परती छोड़ दी जाती है। इन परती भूमियों को प्रयोग में लाने का सबसे उत्तम उपाय कम लागत में उच्च आय प्रदान करने वाली दलहनी फसलों की खेती को प्रोत्साहित करना है। राज्य के कई जिलों में रबी दलहनी फसलों की खेती की जा रही है, परन्तु आज भी किसानों को दलहनी फसलों की वैज्ञानिक खेती की उपयुक्त जानकारी नहीं है। झारखंड़ में दलहन की ऐसी प्रजातियाँ प्रचलित हैं, जो मुख्यतः उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्रों के विकसित की गई है। ये प्रजातियाँ कुछ क्षेत्रों में तो अच्छी उपज देती हैं, परन्तु, पठारी भूमि तथा लाल एवं अम्लीय मिट्टी वाले क्षेत्रों में कई बार असफल हो जाती है। सहभागी फसल चयन ऐसी परिस्थितियों के निदान का एक उत्तम उपाय है। इस पद्धति के माध्यम से विभिन्न दलहनी फसलों की एडवांस ब्रीडिंग लाइन्स एवं अंतिम चरण की किस्मों का किसानों द्वारा उनके अपने खेत में वैज्ञानिक तरीको से आंकलन कर स्थनीय परिस्थितियों के अनुकूल उन्नत प्रजातियों का विकास किया जा सकता है जो राज्य की उत्पादकता एवं कृषि सघनता को बढ़ाने में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

झारखंड की कृषि एक पारम्परिक प्रकार की खेती है जो मुख्यतः वर्षा पर आधारित धान की एकल फसल पर निर्भर है। परंपरागत कृषि पद्धतियों के प्रचलन का मुख्य कारण यहाँ के सीमान्त किसानों के पास संसाधनों एवं जागरूकता का अभाव तथा समय पर पर्याप्त संसाधनों के उपलब्धता की कमी इत्यादि है। झारखंड की फसल सघनता एवं फसल उत्पादकता भी अन्य राज्यों तथा राष्ट्रीय औसत की तुलना में बहुत कम है। इसका प्रमुख कारण यही है कि यहाँ मुख्यतः खरीफ में धान की खेती की जाती है और धान की कटाई के बाद सिंचाई तथा अन्य संसाधनों के अभाव में उन खेतों को खाली छोड़ दिया जाता है। उन खेतों को खाली छोड़ने के बजाय उनमें कम संसाधन खपत करने वाले फसलों को बढ़ावा देना चाहिए। दल्हन फसलें, जैसे चना, मसूर इत्यादि, न्यूनतम सिंचाई तथा कम संसाधनों वाली परिस्थितियों के लिए सबसे उपयुक्त मानी जाती हैं। परन्तु, आज भी झारखंड के कई जिलों में रबी में दल्हन की खेती ज़्यादा प्रचलित नहीं हैं जिसका प्रमुख कारण दल्हन की आधुनिक किस्मों का अभाव तथा सिंचाई के साधनों की कमी है। आधुनिक कृषि में हर परिस्थिति एवं जलवायु के अनुकूल हर फसल की नई किस्में विकसित की जा रही है। झारखंड के किसानों को भी इन किस्मों की जानकारी दी जानी चाहिए तथा उनके सहयोग से यहाँ की परिस्थितियों के अनुकूल नई किस्मों का विकास किया जाना चाहिए।

दल्हन खेती के प्रोत्साहन में सहभागी फसल चयन की भूमिका

झारखंड में धान की खेती के बाद लगभग १.० लाख हेक्टेयर भूमि परती छोड़ दी जाती है। इन खेतों में दल्हन की खेती को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए क्योंकि दल्हन फसलें न केवल कम लागत में उच्च आय प्रदान करती है बल्कि किसानों को प्रोटीन युक्त भोजन भी उपलब्ध कराती है। एक कुपोषण मुक्त समाज के निर्माण में दल्हन फसलों की सदैव महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। बाजार में दल्हन फसलों की कई प्रकार की उन्नत किस्में उपलब्ध हैं। इन उच्च उपज वाली किस्मों के साथ एक बड़ी समस्या यह है कि इनकी लागत ज्यादा है, तथा अच्छी उपज के लिए सिंचाई, खाद आदि संसाधनों का प्रयाप्त मात्रा में उपयोग करना होता है। गरीब तथा सीमान्त किसान कई बार इन लागतों को पूरा नहीं कर पातें हैं, जिस कारण उच्च उपज वाली किस्में भी कई बार असफल हो जाती हैं तथा किसानों को उचित आमदनी नहीं मिल पाती। कई जिलों में तो आज भी ३०–४० वर्ष पुरानी प्रजातियों का प्रयोग किया जा रहा है। उचित

कीमत तथा समय पर दल्हन फसलों के गुणवत्ता बीज की उपलब्धता के अभाव में आज भी झारखंड के किसान उन्हीं पुरानी किस्मों एवं तरीकों के साथ खेती कर जीवन निर्वाह कर रहें हैं।

सहभागी फसल चयन एक प्रकार की सहभागी पादप प्रजनन तकनीक है जिसमें किसानों के सहयोग से नई किस्मों का आंकलन, चयन एवं निर्माण किया जाता है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत पादप प्रजनक व कृषि वैज्ञानिक अपनी नई किस्मों का परिक्षण किसानों के खेत में, किसानों के सहयोग से करते हैं। इस कार्यक्रम के माध्यम से जो भी नई किस्में विकसित होंगी वो स्थानीय जलवायु एवं परिस्थितियों के अनुकूल होंगी। इन किस्मों की खेती से किसान अपने संसाधनों के अनुरूप कम लागत में भी उत्तम आय प्राप्त करने में सक्षम होंगे। धान की परती भूमि के लिए सहभागी फसल चयन के माध्यम से नई किस्मों का विकास करने हेतु निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान देना आवश्यक है:

- दल्हन की एडवांस ब्रीडिंग लाइन्स एवं अंतिम चरण की किस्मों का किसानों के खेत में, किसानों के कृषि सम्बन्धी अभ्यासों के तहत परिक्षण करना चाहिए।
- वैज्ञानिकों को स्थानीय जलवायु के अनुरूप इन किस्मों की उपज से सम्बंधित सभी आंकड़ों का आंकलन करना चाहिए तथा किसानों के सुझाव एवं विचारों को ध्यान में रखते हुए नई किस्मों का चयन करना चाहिए।
- इस प्रक्रिया को ३–४ वर्षों तक अनुसरण करने के बाद ही दल्हन की किस्मों को विमोचन के लिए अग्रसित करना चाहिए।

राज्य के अधिकांश क्षेत्रों में स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार किस्मों का चयन न करने की वजह से ज्यादातर उच्च उपज तथा अधिक आय वाली किस्में स्थानीय न्यूनतन संसाधनों वाली परिस्थितियों में असफल हो जाती हैं। यही कारण हैं कि झारखंड के किसान धान की कटाई के बाद अन्य फसल लगाने के बजाय उसे खाली छोड़ना उचित समझते हैं। सहभागी फसल चयन के माध्यम से न केवल स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल नई किस्मों का चयन किया जाएगा बल्कि राज्य की फसल सघनता एवं पोषण सुरक्षा भी बढ़ेगी। इसके अलावा, किसान अपने द्वारा विकसित नई किस्मों के गुणवत्ता बीज उत्पादन करने में भी सक्षम होंगे जिससे राज्य में गुणवत्ता बीज की उपलब्धता बढ़ेगी। ज़्यादा से ज़्यादा किसान इन आधुनिक किस्मों का लाभ ले पाएंगे। इससे राज्य की दल्हन बीज आपूर्ति श्रृंखला भी मजबूत होगी तथा किसानों को उचित मूल्य एवं समय पर उत्तम किस्म की बीजें भी उपलब्ध करायी जाएंगी।

"हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा तो है ही, यही जनतंत्रात्मक भारत में राजभाषा भी होगी।"

- सी. राजगोपालाचारी

कृषि में पशुधन भूमिका

शिल्पी केरकेट्टा, सनत कुमार महंता, पंकज कुमार सिन्हा,
दीपक कुमार गुप्ता एवं कृष्णा प्रकाश
भाकृअनुप– भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, गौरिया करमा, झारखण्ड 825405

पशुधन का कृषि में एक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका है। देश की अर्थव्यवस्था से लेकर 70% अबादी का पालन पोषण पशुधन पर निर्भर है। कृषि के हर एक कार्य में पशुधन की अहम् भूमिका है। फसल लगाने से अनाज के विपणन तक पशुधन का योगदान है। पशुधन का हर एक उत्पाद व् उपोत्पाद किसी न किसी तरीके से उपयोगी है। पशुधन के उत्पाद जैसे दूध एवं मांस मानव भोजन का एक अभिन्न अंग है। साथ ही देशी गाय और बकरी का दूध औषधि के रूप में उपयोगी है। उपोत्पाद जैसे– गोबर, गौ मूत्र कृषि में उपयोगी उर्वरक व् खाद के प्रयोग में योगदान देते आये है। मृत पशुओं से प्राप्त अपशिष्ट जैसे– चर्बी, चमडी, बाल इत्यादि भी मानव के रोजमरा में इस्तेमाल होने वाले वस्तुओं में उपयोग किये जाते है। अतः पशुओं का कृषि में योगदान अनगिनत है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ देश की लगभग 70% आबादी कृषि तथा पशुपालन पर निर्भर है। युगों से कृषि और पशुपालन दोनों एक दूसरे के पूरक रहे है। जहाँ कृषि से खाद्यान्न की सुरक्षा होती है वही पशुपालन से गुणवत्ता वाले आहार तथा नियमित आय के स्रोत बने रहते है। पशुपालन कृषि कार्य में लगे किसानो को तीहरा लाभ दे रहा है। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि एवं पशुपालन का विशेष महत्व है। सकल घरेलू कृषि उत्पाद में पशुपालन का 14–16 प्रतिशत का योगदान सराहनीय है जिसमें दुग्ध एक ऐसा उत्पाद है जिसका योगदान सर्वाधिक है। भारत विश्व में सर्वाधिक दुग्ध उत्पादन कर प्रथम, अंडा उत्पादन में तीसरा, मांस उत्पादन में सातवाँ स्थान पर है जो की एक मिसाल है। 70 प्रतिशत कृषक पशुपालन व्यवसाय से जुड़े है जिनके पास कुल पशुधन का 80 प्रतिशत भाग मौजूद है। स्पष्ट है कि देश का अधिकांश पशुधन, आर्थिक रूप से निर्बल वर्ग के पास है। इसलिए छोटे व सीमांत किसान के लिए पशुपालन रोजगार सृजन करने में सहायक है। कृषि के कई मुख्य कार्यो जैसे की जुताई, बुवाई, सिंचाई, ढुलाई, मढ़ाई इत्यादि में पशुओं का अहम् भूमिका होता है। इसके अलावा पशुओं द्वारा प्राप्त उत्पाद एवं अपशिष्ट जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, जैविक खाद आदि कृषि को और समृद्ध बनाने में सहायक है। सबसे महत्वपूर्ण पशुपालन में महिलाओं के श्रम का सदुपयोग है जहाँ कृषि कार्य में 35: महिलाओं के श्रम का योगदान है वही पशुपालन में 70: महिलाओं के श्रम का योगदान होता है। कृषि के विभिन्न कार्यों में पशुओं का योगदान निम्न प्रकार से है:

मानव पोषण व् भोजन में योगदान रू प्राचीन काल से ही दूध और मांस मानव भोजन का एक अभिन्न अंग रहा है । प्रकृति ने मानव के ही समान इन पशुओं को अपने नवजात पशुओं के पोषण के लिए स्वयं के शरीर से ही स्तन्ग्रंतियों द्वारा दुग्ध क्षरण की क्षमता दी है । क्यूंकि इन पशुओं में दुग्ध उत्पादन उनके बच्चे के पोषण के अतिरिक्त अवश्यकता से कही अधिक होता है जिसे मानव अपने स्वयं के पोषण के लिए लेता रहता है । तथा दूध के बिना मनुष्य एवं नवजात शिशुओं की वृद्धि एवं पोषण संभव प्रतीत नहीं होता है ।

पशुओं के दूध को सम्पूर्ण आहार माना गया है क्यूंकि इससे शारीर को मिलने वाले आवश्यक तत्व जैसे उर्जा, अम्लीय वसा, एमिनो अम्ल, प्रोटीन, कार्बोहायड्रेट, खनिज लवण तथा विटामिन्स संतुलित मात्रा में विद्यमान है जो की हमारे शारीरिक क्रियाओं के लिए अति आवश्यक है जो की हमारे स्वास्थ्य को ठीक रखने व् अनेक बिमारियों से बचाने की क्षमता प्रदान करता है । हमारे देश में प्रतिवर्ष 9 लाख मैट्रिक टन दूध तथा 6 लाख मैट्रिक टन मक्खन एवं घी पशुओं से प्राप्त करके भोजन में प्रयोग किया जाता है। एक लीटर दूध लगभग 800 कैलोरी उर्जा प्रदान करता है साथ ही 1490 मिलीग्राम कैल्शियम भी देता जो की हमारी हड्डियों व् मांस पेशियों के लिए अति आवश्यक होता है । दूध में ऐसी प्रोटीन भी अच्छी मात्रा में पाई जाती है जिनसे रोग प्रतिरोधक क्षमता मिलती है । दूध और उससे बनने वाले अनेक उत्पाद जैसे

पनीर, घी, खोवा, दही इत्यादि का मानव भोजन व् पोषण का महत्वपूर्ण भूमिका है । दही व् योगहर्ट में कुछ ऐसे तत्व होते है जिनके लगातार उपयोग करने से औसत आयु बढ़ जाती है। बकरी के दूध में औषधीय गुण होते है जो की गैस्ट्रिक अलसर, डायबिटीज और लीवर सम्बंधित बिमारियों के उपचार में बहुत ही मूल्यवान सिद्ध होता है ।

सारणी –1: विभिन्न पशुधन के दूध का औसत संगठन (प्रतिशत)

पशुधन	पानी	वसा	लाक्टोस	प्रोटीन	खनिज लवण
गाय	87.20	4.2	4.5	3.5	0.70
भैंस	83.50	7.2	4.8	3.8	0.70
बकरी	87.00	4.0	4.2	3.52	0.80
भेड़	80.70	7.9	4.8	5.3	0.85

पशुओं से प्राप्त मांस न्यूनतम प्रोटीन का एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं जो की मानवों को पोषण सुरक्षा प्रदान करता है। रेड मीट हमें आयरन, जिंक और बी विटामिन प्रदान करता है। आहार में मांस विटामिन बी12 के मुख्य स्रोतों में से एक है जो की हमारी शारीरिक व् मानसिक वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है जिसकी वजह से मनुष्य अपना अधिक से अधिक योग दान कृषि में दे पाता है ।

खाद व उर्वरक के उत्पादन तथा प्रयोग में योगदान

- गोबर व गौ मूत्र : गोबर का उपयोग उर्जा के रूप में कंडे बनाकर, घर को लीपने, पंचगव्य बनाने में अथवा गोबर से गमले, कागज भी बनाये जाते है । हमारे देश में पशुओं से प्राप्त गोबर की मात्र लगभग 100 करोड़ टन प्रतिवर्ष है जिसका मूल्य लगभग 1000 करोड़ रुपये होता है ।
- गोबर की खाद : गोबर की खाद के प्रयोग से मृदा के संरचना तथा उर्वरा शक्ति दोनों में सुधार होता है, जिससे की मृदा की जल धारण क्षमता बढती है । कार्बनिक पदार्थो की मात्रा गोबर की खाद में अधिक पाई जाती है इससे मृदा की नमी बहुत दिनों तक बनी रहती है। आवश्यक पोषक तत्व जैसे की नाइट्रोजन, फॉस्फोरस अथवा पोटाश की उपलब्धता गोबर की खाद में अच्छी होती है। एक व्यस्क गौ वंश से 10–12 किलो ग्राम गोबर प्राप्त करते है जिससे की प्रति वर्ष 4–5 टन खाद प्राप्त कर सकते है ।
- कम्पोस्ट में गोबर का महत्व : बचे हुए कृषि के अवशेष, पशुओं का बचा हुआ चारा, बिछावन, पेड़ की पत्तियां इत्यादि को गोबर में मिलाकर कम्पोस्ट तैयार किया जाता है, जो की मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में सुधार लाता है। इसके अलावा वर्मीकम्पोस्ट भी गोबर से तैयार किया जाता है जो की उपरोक्त सभी सामग्रियों के साथ केंचुओं की मदद से उत्पादित किया जाता है जो की जैविक खेती के लिए वरदान साबित हो रहा है।
- गौ पशुओं के सींग से प्राप्त जैविक खाद : मृत पशुओं से प्राप्त सींग में गोबर भर कर ६ महीने तक जमीन में दबा कर रखने से सींग खाद बनता है। जिसे जैविक के रूप में २ ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर खाद के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है । इसके अलावा सींग सिलिका खाद का भी उपयोग कर सकते है इसमें गोबर के साथ सिलिका पत्थर प्रयोग में लिया जाता है । खाद के रूप में इसकी मात्रा 1 ग्राम/15 लीटर पानी के मान से किया जाता है।
- जैव कीटनाशक के उत्पादन में : इसके लिए गोबर, मूत्र तथा खट्टी छाछ का प्रयोग किया जाता है।
- गोबर गैस व स्लरी का उपयोग : पशुओं द्वारा प्राप्त गोबर से गोबर गैस उत्पादन कर ईंधन के रूप में उपयोग किया जाता है। गोबर गैस प्राप्त होने के उपरान्त गोबर पानी के मिश्रण (स्लरी) को भी खाद के जैसा इस्तेमाल कर सकते है।
- अजोला उत्पादन : हरे चारे का विकल्प अजोला उत्पादन में भी गोबर की अहम भूमिका है ।

मानव उपयोगी दवाओं हेतु पशुओं का उपयोग : पशुओं द्वारा उत्पादन जैसे दूध मनुष्यों के बिमारियों का रोकथाम करने में सहायक है । गाय का दूध अमृत के समान तथा बकरी का दूध औषधि तुल्य माना जाता है। अपने यहाँ की देशी गाय द्वारा प्राप्त दूध ए 1 प्रोटीन से पूर्ण है जो की मानव शरीर के लिए लाभदायक है । इसके अलावा बकरी का दूध डेंगू जैसे बीमारी में औषधि साबित हुई है ।

जुताई व् बुवाई में योगदान : भारत में कृषि कार्य में योगदान सबसे ज्यादा छोटे व मध्यम किसान द्वारा होती है जिनके पास आधुनिक यन्त्र जैसे ट्रेक्टर खरीदने के लिए आवश्यक पूंजी का आभाव होता है तथा ये किसान सहजता से उपलब्ध पशुओं से खेतो की जुताई करता है। जुताई कार्य में लगे अनुमानित पशुओं की संख्या 88 मिलियन है। हमारे देश में ६० मिलियन पशुओं से अधिक पशुओं की संख्या कृषि में जुताई, बुवाई तथा अन्य कार्यो में लगे हुए है। आज भी हमारे देश में कई किसान फस्लोउत्पादन हेतु बुवाई चाहे वो खेतो में हो या मेढ़ो में हो पशुओं का इस्तेमाल करते है।

मढ़ाई में योगदान : छोटे किसान जिनकी उपज कम होती है तथा जिनके पास थ्रेशर की उपलब्धता नहीं होती ऐसे किसान अपने उपज की मढ़ाई पशुओं के माध्यम से करते है।

उपज की ढुलाई में योगदान : खेतो में कटी फसलों को खलिहान तक पहुँचाने एवं खलिहान से अनाज को घर तक पहुँचाने में पशुओं का इस्तेमाल, बैलगाड़ी अथवा घोड़ागाड़ी की मदद ली जाती है।

सिंचाई में योगदान : आज भी जिन गांवो में बिजली या सिंचाई के अन्य साधन उपलब्ध नहीं है वहां पशुओं द्वारा रहट, मोट इत्यादि से सिंचाई का कार्य किया जाता है

मृत पशुओं से प्राप्त अपशिष्ट की उपयोगिता : मृत पशु से प्राप्त चर्बी, हड्डी, चमड़ी, बाल, सींग इत्यादि अपशिष्ट रोज मरा में इस्तेमाल होने वाले वस्तुओं में उपयोग किया जाता है ।

पशुओं के अन्य उपयोग : यातायात में उपयोग, सुरक्षा एवं मनोरंजन में उपयोग, पालतू पशुओं के रूप में उपयोग ।

"प्रान्तीय ईर्ष्या–द्वेष को दूर करने में जितनी सहायता इस हिन्दी प्रचार से मिलेगी,
उतनी दूसरी किसी चीज से नहीं मिल सकती।"

- सुभाषचंद्र बोस

पॉलीहाउस टमाटर में रोग प्रबन्धन

दुर्गेश सिंह[1], आशीष कुमार सिंह[3], कृष्णा रघुवंशी[2], चन्दन महाराणा[3] एवं आशा कुमारी[4]

[1]शस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर, बिहार–813210

[2]शस्य विज्ञान विभाग, शिएट्स, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश–211007

[3]भाकृअनुप – विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा ,उत्तराखंड–263601

[4]भाकृअनुप– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, गौरिया करमा, हजारीबाग, झारखण्ड– 825405

पॉलीहाउस (प्लास्टिक के हरित गृह) एक ऐसी संरचना होती हैं, जिसमें हम ज्यादा बजार मूल्य वाली फसलों का बेंमौसमी फसलोत्पादन करतें हैं। इसकी संरचना ऐसी होती है, की इसमें कीटों तथा रोगों के कारक आदि के जाने की संभावना कम होती है परन्तु फिर भी कुछ रोग कारक और कीट आदि विभिन्न माध्यमों से पॉलीहाउस के अंदर जाकर फसलों को नुकसान पहुँचाते हैं। प्रस्तुत लेख में टमाटर मे होने वाले मुख्य रोग एवं उनके प्रबंधन के बारे में विस्तृत तरीके से गया है।

टमाटर ***(लाइकोपोर्सिकान एस्कुलेंटस)*** एक बहुत ही महत्वपूर्ण सब्जी है, अधिकतर लोग इसके बिना खाना बनाने की सोच भी नहीं सकते है। इसका पौधा अत्यधिक शाकीय तथा कमजोर तने वाला होता है जिसमे पीले रंगों के फूल और लाल रंग के फल लगते है। फलों का आकार प्रजातियों के अनुसार अलग–अलग होता है जैसे की चेरी टमाटर– 1–2 सेमी. और बीफस्टीक टमाटर– 10 सेमी.। इसका प्रयोग सलाद, आचार सब्जी, सूप तथा चटनी इत्यादि बनाने में किया जाता है। विश्व में यह तीसरी सबसे ज़्यादा बोई जाने वाली सब्जी की फसल है जिसका उत्पादन लगभग 1279.93 लाख टन और क्षेत्र 46.16 लाख हेक्टेयर है। इसमें पाये जाने वाले साइट्रिक और मैलिक एसिड के कारण इसका स्वाद तो अम्लीय होता है परन्तु शरीर के अन्दर यह क्षारीय प्रतिक्रिया पैदा करता है।

टमाटर में प्रचुर मात्रा में विटामिन्स, कार्बनिक अम्ल तथा आवश्यक अमीनों अम्ल इत्यादि पाया जाता है जिसकी सूची इस प्रकार है–

घटक	पोषक तत्व प्रति 100 ग्राम टमाटर	घटक	पोषक तत्व प्रति 100 ग्राम टमाटर
उर्जा	74 किलोजूल	मैग्रीसियम	11 मिग्रा
कार्बोहाईड्रेट	3.9 ग्राम	मैंगनीज	0.114 मिग्रा
सुगर	2.6 ग्राम	फास्फोरस	24 मिग्रा
आहार फाइबर	1.2 ग्राम	पोटेशियम	237 मिग्रा
वसा	0.2 ग्राम	कैल्सियम	20 मिग्रा
प्रोटिन	0.9 ग्राम	आयरन	1.8 मिग्रा
विटामिन 'ए'	320 आई.यू.	ऑक्सेलिक अम्ल	2 मिग्रा
बी–कैरोटीन	192 एम सीजी.	एस्कौर्बिक ऐसिड	31 मिग्रा
लाइकोपीन	2575 माइक्रोग्राम	पानी	94.5 ग्राम

टमाटर कम अवधि में अधिक उत्पादन और बाजार मूलय के कारण आर्थिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण फसल है, इसलिए इसका उत्पादन क्षेत्र दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। अधिक लाभ के साथ–साथ इस फसल के उतपादन में बहुत सी बाधाएं भी हैं जैसे की इसमें लगने वाले रोग तथा कीट। अनेक प्रकार के बैक्टीरिया, फफूदी वायरस तथा निमेटोड द्वारा होने वाले रोगों से टमाटर की फसल में बहुत अधिक हानि होती है। अतः इन हानियों से फसल को बचाने के लिए उपयुक्त प्रबंधन करना अत्यंत आवश्यक है ताकि हमें आर्थिक लाभ रहे।

पॉलीहाउस में टमाटर की खेती

पॉलीहाउस (प्लास्टिक के हरित गृह) एक ऐसी संरचना होती है जिसमे हम ज्यादा बाजार मूल्य वाली फसलों का बेमौसमी फसलोत्पादन करते हैं। इसकी सहायता से हम वातावरण के प्रतिकूल होने के बावजूद फसलों को उतपादित करते हैं। पॉलीहाउस में उत्पादित फसलों की गुणवता और बेमौसमी उत्पादन होने के कारण फसलों का बाजार मूल्य अधिक मिलता है। इसकी संरचना ऐसी होती है की इसमें कीटों तथा रोगों के कारक आदि के जाने की संभावना कम होती है परन्तु फिर भी कुछ रोग कारक और कीट आदि विभिन्न माध्यमों से पॉलीहाउस के अन्दर जा कर फसलों को नुकसान पहुँचाते हैं। जिसके कारण हमें काफी आर्थिक नुकसान होता है क्योंकि पॉलीहाउस में उत्पादन लेने के लिए हमें खुले खेतों की अपेक्षा काफी लागत लगानी पड़ती हैं। इस लेख का उद्देश्य पॉलीहाउस में होने वाले कुछ प्रमुख रोगों और उनके प्रबंधन के बारे में बताना है जो की निम्नलिखित हैं–

- **टमाटर मोसैक :** पॉलीहाउस में टमाटर की खेती में होने वाली यह सबसे खतरनाक रोग है, जो कि बहुत से वायरस के अकेले या मिलकर एक साथ आक्रमण करने के कारण होता है। इसका मुख्य लक्षण पत्ती का एक बिशिष्ट पीला रंग तथा हल्के या गहरे रंग हरे रंग के चित्तीदार निशान है, इसके अलावा कुछ वायरस तो पूरे पौधे को ही सुखा देते हैं। फल आ जाने की स्थिति में उनपे भी निर्जीव कोशिकाएं दिखाई देती हैं, जिसके कारण उत्पादन का बाजार में उचित मूल्य नही मिलता है। इस रोग से प्रभावित होने के कारण पौधे कभी–कभी बोने ही रह जाते हैं। (चित्र–1)

चित्र–1 : टमाटर मोसैक

रोगप्रबन्धन–

- ❖ रोगग्रसित पौधें को निकाल कर के नष्ट कर देना चाहिए।
- ❖ पॉलीहाउस के अन्दर या आस–पास के खर–पतवारों को निकाल कर नष्ट कर दें।
- ❖ बीज को गर्म पानी से (50°C पर 25 मिनट) अथवा ट्राईसोडियम फॉस्फेट को 90 ग्राम प्रति लीटर की दर से बुवाई के 20 मिनट पहले बीज को उपचारित करना चाहिए।
- ❖ इस रोग के कारक (वायरस) एफिड की सहायता से पौधों तक पहुंचते हैं अतः हमें एफिड को पॉलीहाउस के अन्दर आने से रोकने का हर प्रयास करना चाहिए।
- ❖ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जो भी काम करने वाले लोग या औजार पॉलीहाउस के अंदर आ रहे हैं, वो वायरस मुक्त हों।

- **आर्द्रगलन (डंपिंग–ऑफ) :** मृदा में मौजूद कारकों से होने वाला यह रोग मुख्यतः तब होता है जब बीज–शैय्या को वैज्ञानिक तरीकों से न बनाया जाए। यह रोग *पिथियम, फाइटोप्थोरा, फ्यूसेरियम, राइजोक्टोनिया, स्क्लेटियम* आदि प्रजाति के फफूँदों के कारण होता है। इस रोग के कारण पौधशाला में बीजों का अंकुरण तथा पौधों की स्थापना दोनों प्रभावित होती है। इस रोग का लक्षण दो प्रकार

का होता है– एक पौधे के मृदा से बाहर आने से पहले (रोग कारक बीज के अंकुरण के तुरंत बाद बाद ही आक्रमण करके उन्हें मार देते हैं परिणामस्वरूप पौधा मृदा से बाहर ही नहीं आ पाता) और दूसरा मृदा से बाहर आने के बाद (रोग कारक पौधे के बाहर आने के बाद मृदा से सटे हुए तने पर आक्रमण करते हैं जिससे पौधा उसी स्थान से सड़कर गिर जाता है)। मृदा, जल और तापमान का अधिक होना इस रोग के लिए अनुकूल होता है। (चित्र–2)

चित्र–2 : आर्द्रगलन (डंपिंग–ऑफ)

रोगप्रबन्धन–

- ❖ बुवाई से पूर्व मृदा को फॉर्मल डिहाइड से उपचारित करना चाहिए।
- ❖ केप्टान या थीरम द्वारा 2 ग्राम प्रति किलो के दर से बीजोपचार करें।
- ❖ रोग कारक के गतिविधियों को फैलने से रोकने के लिए दो फसलों के बीच में बाधक का इस्तेमाल करना चाहिए।
- ❖ आवश्यकता से अधिक पानी या उर्वरक के इस्तेमाल से बचना चाहिए।
- ❖ ट्राइकोडर्मा का प्रयोग बीजोपचार या मृदा उपचार में करने से काफी फायदा मिलता है और पौधों का अंकुरण भी काफी अच्छा होता है।

- **अगेती झुलसा (अर्ली ब्लाइट) :** यह रोग आल्टर्नेरिया सोलेनाइ नामक फफूँद से होता है जो कि मुख्यतः पौधे की वानस्पतिक वृद्धि के समय आक्रमण करता है परन्तु कभी–कभी नर्सरी पौधों को भी हानि पहुंचता है। इस रोग का मुख्य लक्षण पत्ती पर गोलाकार गहरा भूरा रंग होता है जो कि टारगेट बोर्ड की तरह दिखाई देता है। यदि रोग कारक का प्रभाव ज्यादा हो जाता है तो पत्ती मुरझा कर गिर जाती है और पौधा बिना पत्ती के धीरे–धीरे सूख कर मर जाता है। मृदा जल और पॉलीहाउस की आर्द्रता अधिक होने पर इस रोग की संभावना बढ़ जाती है। (चित्र–3)

चित्र–3 : अगेती झुलसा (अर्ली ब्लाइट)

रोग प्रबन्धन–

- ❖ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पॉलीहाउस में आर्द्रता ज़्यादा ना होने पाए।
- ❖ केप्टान या थीरम द्वारा 2 ग्राम प्रति किलो के दर से बीजोपचार करें।

- ❖ यदि पौधा रोग्रसित हो जाए तो उसे पॉलीहाउस से निकालकर उचित तरीके से नष्ट कर देना चाहिए।
- ❖ उर्वरक और सिंचाई जल की उचित मात्रा का ही प्रयोग करें।
- ❖ रोग प्रतिरोधी प्रजातियों का प्रयोग करना चाहिए जैसे कि– आयरन लेडी, लेमन ड्राप, एल–15, मर्गलोब इत्यादि।
- ❖ यदि प्रकोप ज़्यादा हो जाए तो डाइथेन एम्–45 का छिड़काव करें।

- **फ्यूसेरियमम्लानि रोग (फ्यूसेरियम विलट) :** *फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम* से होने वाले इस रोग में पत्तियां पीली तथा डंठल मुरझा जाती है जिसके कारण पत्तियाँ धीरे–धीरे मर जाती हैं। इस रोग का प्रभाव सबसे पहले निचली पत्ती पर पड़ता है बाद में प्रभाव ऊपर की ओर बढ़ता जाता है और कुछ ही समय में पूरा पौधा सूख के मर जाता है। चित्र–4

चित्र–4 : फ्यूसेरियम म्लानि रोग (फ्यूसेरियम विल्ट)

रोग प्रबन्धन–

- ❖ अगली फसल लेने से पहले पॉलीहाउस को पूर्ण से साफ़ कर लेना चाहिए।
- ❖ उत्पादन क्रियायों में इस्तेमाल होने वाले सामानों को उपचारित कर लेना चाहिए।
- ❖ नाइट्रेट–नाइट्रोजन, सूक्ष्म तत्वों तथा चुना युक्त कैल्सियम हाईड्राक्साइड की समुचित मात्रा का इस्तेमाल करने से इस रोग के प्रभाव को कम किया जा सकता है।
- ❖ कम्पोस्ट का इस्तेमाल करने से भी काफी फायदा मिलता है।

- **बैक्टीरियल म्लानि रोग (बैक्टीरियल विल्ट) :** यह रोग *स्यूडोमोनास सोलेनेसीएम* नामक फफूँद से होता है जो कि विश्व के सभी जगहों जहाँ भी टमाटर, आलू, मिर्ची और बैगन आदि की खेती है, सक्रीय रूप में पाया जाता है। इस रोग के कारण पौधा कम समय में पूरा सूख जाता है क्योंकि, पत्तियाँ बिना पीली पड़े अचानक मुरक्षा जाती हैं और तना कहीं से भी सडने लगता है। इस रोग में बैक्टीरिया संवहनी ऊतक पे आक्रमण करके, पालीसैकेराइड्स उत्पादित कर देता है जिसके कारण पौधों को जल तथा मिनरल्स मिलना बंद हो जाता है और पौधा पूरी तरह से सूख के मर जाता है। (चित्र–5)

चित्र–5 बैक्टीरियल म्लानि रोग (बैक्टीरियल विल्ट)

रोग प्रबन्धन–

- ❖ 15 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से ब्लीचिंग पाउडर का प्रयोग करें।
- ❖ पेनिसिलीन और एग्रोमाईसिन–100 से बीजोपचार करना चाहिए।
- ❖ 35 ग्रामलहसुन प्रति 77 मिली साफ पानी का घोल बनाकर जड़ के आस–पास डालने से काफी फायदा मिलता है।
- ❖ रोग प्रतिरोधी प्रजातियों का प्रयोग करें जैसे कि– अर्का अभा, अर्का आलोक आदि।
- ❖ पौधशाला से पौधों को निकलने के बाद यदि स्यूडोमोनास ग्लूमी से पौधोपचार करने के उपरांत उन्हें रोपित किया जाता है तो इस रोग से होने वाली हानि में कमी आती है।
- ❖ यदि प्रकोप अधिक बढ़ जाए तो स्ट्रेपटोसैक्लीन का 0.25 प्रतिशत की दर से छिड़काव करें।

- **टमाटर का पर्ण कुंचन (लीफ कर्ल)** यह टमाटर में होने वाला एक महत्वपूर्ण रोग है जो कि एक वाइरस के कारण होता है। यदि यह रोग पौध रोपन के 20 दिन के अंदर आ जाता है तो इससे होने वाली हानि बहुत जादा होतीा है। इस रोग का मुख्य लक्षण मोसैक, पत्तियों में शिराओं के बीच में पीलापन, सिकुडन, सिलवट के साथ पत्तियों के किनारों का मुड़ना है। प्रकोप ज्यादा होने पर पौधों में बौनापन और बांझपन भी आ जाता है जिसके कारण पौधों में कुछ या कभी–कभी एक भी फल नही लगते हैं। (चित्र–6)

चित्र–6 : पर्ण कुंचन (लीफ कर्ल)

रोग प्रबन्धन–

- ❖ हमेशा ऐसे पौधों का रोपण करें जो विषाणुरहित हो या फिर रोपण से पहले उसे उपचारित कर लेना चाहिए।
- ❖ जैसे ही किसी पौधे में रोग का लक्षण दिखाई दे उसे पॉलीहाउस से बाहर निकाल के नष्ट कर देना चाहिए।
- ❖ पॉलीहाउस को खर–पतवारसे मुक्त रखना चाहिए क्योंकि फसलों के ना रहने पर ये रोग कारकों को जीवित रहने का माध्यम बन जाते हैं और जब हम पौधों को पॉलीहाउस में लगाते हैं तो ये हमारी फसनों पर आक्रमण कर देते हैं।
- ❖ रोग प्रतिरोधी क्षमता वाली प्रजातियों को उगाना चाहिए जैसे कि– हिसार अनमोल और हिसार गौरव आदि।
- ❖ फसल के कटने के तुरंत बाद पॉलीहाउस को साफ़ कर देना चाहिए।

- **पॉलीहाउस में परजीवी कृमि (निमेटोड) :** पॉलीहाउस में निमेटोड बहुत ही हानिकारक होता है क्योंकि ये सीधे जड़ पे ही आक्रमण करते है, और इससे प्रभावित पौधों में मृदा की सतह से ऊपर कोई विशेष लक्षण नहीं दिखाई देता है और जिसके कारण इसकी पहचान करने में किसानों को बहुत दिक्कत होती है। इसके लक्षण पोषक तत्वों की कमी से होने वाले लक्षणों के जैसे ही होते हैं अतः किसान

बार–बार उर्वरकों का इस्तेमाल करता है, जिसके कारण उत्पादन लागत बढ़ने के साथ–साथ मृदा प्रदूषण भी होता है। मुख्य रूप से जड़ गाँठ कृमि (रूट नॉट निमेटोड) और रेनिफोर्म निमेटोड का प्रकोप ज्यादा देखने को मिलता है। पौधों की वृद्धि अच्छी ना होना, बौनापन तथा पत्तियों का पीलापन इसके कुछ महत्वपूर्ण लक्षण हैं। (चित्र–7&8)

चित्र–7 : निमेटोड प्रभावित बौना पौधा

चित्र–8 : निमेटोड से प्रभावित जड़

रोग प्रबन्धन–

- ❖ पॉलीहाउस बनाने से पहले मृदा की जाँच करवा लेनी चाहिए।
- ❖ सिंचाई जल को उपचारित करके ही प्रयोग में लाएं।
- ❖ पौधशाला के लिए स्वस्थ तथा उचित स्थान का चुनाव करें।
- ❖ पौधशाला को कार्बोफ्यूरान 0.3 ग्राम ए.आई. प्रति वर्ग मीटर से उपचारित करना चाहिए।
- ❖ कार्बोफ्यूरान 3 प्रतिशत ए.आई. से बीजोपचार करें।
- ❖ नीम, महुआ तथा करंज केक आदि का प्रयोग बुवाई से 10 दिन पूर्व करने से इस रोग का प्रभाव कम पड़ता है।
- ❖ गेंदा (मेरीगोल्ड) को साथ में लगाने से निमेटोड नियंत्रित रहता है।
- ❖ *स्यूडोमोनास फ्लुरेस्सांस या ट्राइकोडर्मा विरिडी* को 2.5 किग्रा प्रति हेक्टयर की दर से गोबर की सड़ी हुई खाद के साथ मिलाकर बुवाई के 10–15 दिन पहले मृदा में मिला दें तथा बरद में कार्बोफ्यूरान 1 किग्रा ए.आइ. प्रति हेक्टयर की दर से प्रयोग करने से निमोटेड से होने वाली हानि से बचा जा सकता है।

**"हिंदी को देश में परस्पर संपर्क भाषा बनाने का कोई विकल्प नहीं,
अंग्रेजी कभी जनभाषा नहीं बन सकती।"**

- मोरारजी भाई देसाई

किसान उत्पादक संगठन (एफ.पी.ओ.) का गठन और सम्बर्धन

इन्द्रजीत[1], दुष्यंत कुमार राधव[1], वीरेन्द्र कुमार यादव[2], धर्मजीत खेरवार[1], सन्नी कुमार[3] एवं शशिकान्त चौबे[3]

[1]कृषि विज्ञान केंद्र, रामगढ़

[2]कृषि प्रणाली का पहाड़ी एवं पठारी अनुसंधान केन्द्रए प्लांडु, राँची

[3]भा.कु.अनु.प. का पूर्वी अनु. परिसर, पटना

किसान उत्पादक संगठन, असल में किसानों का एक समहू होता है, जो वास्तव में कृषि उत्पादन कार्य में लगा हो और कृषि व्यावसायिक गतिविधियां चलाने में एक जैसी धारणा रखते हों। एक गांव या फिर कई गांवों के किसान मिल कर भी यह समूह बना सकते हैं। यह समूह बनाकर भारत कंपनी अधिनियम 2013 के तहत एक किसान उत्पादक कंपनी के तौर पर पंजीकरण के लिए आवेदन कर सकते हैं।

किसान उत्पादक संगठन (एफपीओ) के माध्यम से जहां किसान को अपनी पैदावार के सही दाम मिलते हैं, वहीं खरीददार को भी उचित कीमत पर वस्तु मिलती है। वहीं यदि अकेला उत्पादक अपनी पैदावार बेचने जाता है, तो उसका मुनाफा बिचौलियों को मिलता है। एफपीओ सिस्टम में किसान को उसके उत्पाद के भाव अच्छे मिलते हैं, उत्पाद की बर्बादी कम होती है, अलग–अलग लोगों के अनुभवों का फायदा मिलता है।

भारत सरकार किसानों की आर्थिक हालत सुधारने एवं कृषि क्षेत्र को बढ़ावा देने के लिए लगातार नई नई योजनाएं लेकर आती रही है उसी कड़ी में सरकार ने एफपीओ की शुरुआत की है जिसके भीतर किसानों को संगठित रूप से खेती करने के लिए सरकार से सहायता दी जाती है। जिससे तहत कृषि उपकरण, खाद एवं बीज खरीदने के लिए अपनी फसल की प्रोसेसिंग यूनिट स्टोरेज आदि की व्यवस्था करने के साथ अपनी फसल को अच्छे दाम पर बेच सकते हैं। और साथ ही साथ अलग– अलग थोड़ा–थोड़ा खरीदने की जगह एक साथ मिलकर खरीदेंगे तो कम पैसे में खरीद सकते हैं। इस कंपनी में फायदे तो कोऑपरेटिव सोसाइटी की तरह होंगे किंतु क्षूमता प्राइवेट लिमिटेड कंपनी की।

किसान उत्पादक संगठन के उद्देश्य

- यह लघु स्तर के उत्पादकों विशेष रूप से छोटे एवं सीमांत किसानों के समूहीकरण के उद्देश्य से बनाया गया ताकि किसानों के हितों का संरक्षण किया जा सके।
- किसानों को बीज, उर्वरक, मशीनों की आपूर्ति, मार्केट लिंकेज के संदर्भ में परामर्श एवं तकनीकी सहायता देना।

- किसानों को प्रशिक्षण, नेटवर्किंग, वित्तीय एवं तकनीकी परामर्श देना।
- किसानों को ऋण की उपलब्धता एवं उत्पाद को बाजार तक पहुँच सुनिश्चित करने के संदर्भ में उन चुनौतियों के समाधान का प्रयास करना जिनका सामना छोटे और सीमांत किसान करते हैं

एफपीओ के नियम

- बोर्ड ऑफ डायरेक्टर में 5 –15 सदस्य हो सकते हैं तथा इनका कार्यकाल 1 –5 वर्ष का तक होता है
- तीन महीने में एक बार बोर्ड ऑफ डायरेक्टर का बैठक करवाना आवश्यक होता है
- मुख्य कार्यकारी अधिकारी, कम्पनी के कार्यकलाप का प्रबंधन तथा सभी रजिस्टर का रख – रखाव (मेन्टेन) करते
- मुख्य कार्यकारी अधिकारी, वार्षिक लेखा–जोखा तैयार करते हैं एवं चार्टर्ड अकाउंटेंट से ऑडिट करवाते हैं
- नियमित मुख्य कार्यकारी अधिकारी के नहीं होने पर, बोर्ड ऑफ डायरेक्टर के अध्यक्ष ही इन कार्यों को करते हैं
- प्रत्येक वर्ष एक बार वार्षिक सामान्य बैठक (एनुअल जेनरल मिटिंग) का आयोजन जरूरी होता है

एफपीओ से किसान को लाभ

- एफपीओ एक सशक्तिशील संगठन होने के कारण अपने सदस्य में किसानों को बेहतर सौदेबाजी करने की शक्ति देगी जिसे उन्हे प्रतिस्पर्धा मूल्यों पर खरीदने या बेचने से उचित लाभ मिल सकेगा।
- बेहतर विपणन सुअवसरों के लिए कृषि उत्पादों का एकत्रीकरण, बहुलता में व्यापार करने से प्रसंस्करण, भंडारण, परिवहन इत्यादि मदों में होने वाले संयुक्त खर्चों से किसानों को बचत कराती है।
- एफपीओ मूल्य संवर्धन के लिए छंटाई/ग्रेडिंग, पैकिंग, प्राथमिक प्रसंस्करण इत्यादि जैसे गतिविधियाँ शुरू कर सकता है जिससे किसानों के उत्पादन को उच्चतर मूल्य मिल सकता है।
- एफपीओ के गठन से ग्रीनहाउस, कृषि मशीनी–करण, शीत–भण्डारण, कृषि प्रसंस्करण इत्यादि जैसे कटाई पूर्व और कटाई पश्चात संसाधनों के उपयोग में सुविधा प्रदान करती है।
- एफपीओ आनाज भंडारों, कस्टम केन्द्रों इत्यादि को शुरूकर अपनी व्यवसायिक गतिविधियों को विस्तारित कर सकते है। जिससे इसके सदस्य किसान सेसाधनों और सेवाओं का उपयोग रियायती दरों पर ले सकते हैं।

एफपीओ योजना की पात्रता

- आवेदक पेशे से किसान होना चाहिए।
- आवेदक भारतीय नागरिक होना चाहिए।
- मैदानी इलाके में एक एफपीओ में कम से कम 300 सदस्य होने चाहिए।
- पहाड़ी क्षेत्र में एक एफपीओ में कम से कम 100 सदस्य होने चाहिए।
- एफपीओ के पास स्वयं की कृषि योग्य भूमि होनी अनिवार्य है एवं उसे समूह का हिस्सा होना भी अनिवार्य है।

महत्वपूर्ण दस्तावेज एवं कुछ तथ्य

- आधार कार्ड
- निवास प्रमाण पत्र

- जमीन के कागजात
- राशन कार्ड
- आय प्रमाण पत्र
- बैंक खाता विवरण
- पासपोर्ट साइज फोटोग्राफ
- मोबाइल नंबर

भारत सरकार द्वारा 10000 नए किसान उत्पादक संगठन बनाने का लक्ष्य वर्ष 2024 तक है।

- वर्ष 2024 तक इस पर 5000 करोड़ रुपये खर्च होंगे। सरकार हर एफपीओ के किसानो को 5 वर्ष के लिए सरकारी समर्थन दिया जायेगा।
- केंद्र सरकार संगठन के काम को देखने के बाद 15 लाख रुपए की सहायता देगी। इस सहायता की पूरी राशि तीन वर्षों में मिलेगी।
- इसमें वही सारे फायदे मिलेंगे जो एक कंपनी को मिलते हैं। इससे कुल 30 लाख किसान लाभान्वित होंगे।
- इस योजना का मकसद किसी उद्योग के बराबर ही खेती से मुनाफा हासिल करना है।
- देश में कृषि का विस्तार होगा और किसानों के आर्थिक हालात भी बेहतर होंगे।

एफ.पी.ओ. द्वारा किए जाने वाली व्यापक सेवाएं और गतिविधिया

- एफ.पी.ओ. अपने विकास के लिए यथावश्यक निम्नलिखित प्रासंगिक प्रमुख सेवाओं और गतिविधियों को प्रदान और शुरू कर सकता है–
- यथेचित रूप से निम्न थोक दरों पर बीज, उर्वरक, कीटनाशक और इस तरह के अन्य निवेश जैसे उच्च गुणवत्ता वाली इनपुट की आपूर्ति करना।
- प्रति यूनिट उत्पादन लागत को कम करने के लिए सदस्यों हेतु कस्टम हायरिंग आधार पर कल्टीवेटर, टिलर, स्प्रिंकलर सेट, कंबाइन हार्वेस्टर और इस तरह के अन्य मशीनरी और उपकरणों की तरह जरूरत आधारित उत्पादन और पोस्ट प्रोडक्शन मशीनरी और उपकरणों को उपलबध कराना।
- सफाई, परख, छॅटाई, ग्रेडिंग, पैकिंग और साथ ही यथोचित सस्ती दर पर यूजर चार्ज के आधार पर फार्म लेवल प्रोसेसिंग जैसी मूल्य संवर्धन सुविधाए उपलब्ध कराना। भंडारण और परिवहन सुविधाएं भी उपलब्ध कराई जा सकते है।
- बीज उत्पादन, मधुमक्खी पालन, मशरूम की खेती आदि जैसी उच्च आय देने वाली गतिविधिया।
- किसान सदस्यों की उपज के छोटे लॉट को एकत्र करना तथा मूल्य संवर्धन करके उन्हें अधिक बिक्री योग्य बनाना।
- उत्पादन और विपणन में विवेकपूर्ण निर्णय के लिए उपज के बारे में बाजार की जानकारी को सुगम बनाना।
- साझा लागत के आधार पर भंडारण, परिवहन, लोडिंग अनलोडिंग आदि जैसी– लाजिस्टिक सेवाओं की सुविधा प्रदान करना।
- खरीददारों को बेहतर मोल–भाव की ताकत के साथ और बेहतर एवं पारिश्रमिक कीमतों की पेशकश करने वाले विपणन चैनलों में कुल उपज का विपणन।

एफ पी ओ. योजना के अंतर्गत आवेदन करने की प्रक्रिया

- सर्वप्रथम आपको राष्ट्रीय कृषि बाजार की आधिकारिक वेबसाइट पर जाना होगा

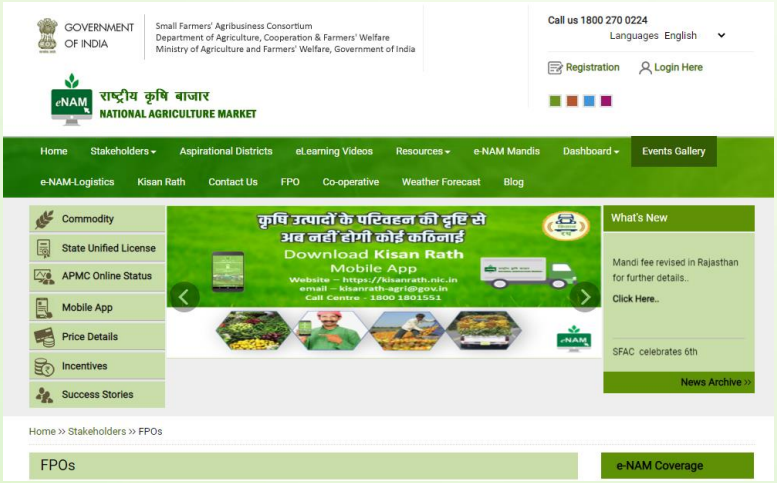

- अब आपके सामने होम पेज खुलकर आएगा।
- होम पेज पर आपको एफपीओ के विकल्प पर क्लिक करना होगा।
- इसके पश्चात आपको रजिस्ट्रेशन के विकल्प पर क्लिक करना होगा।

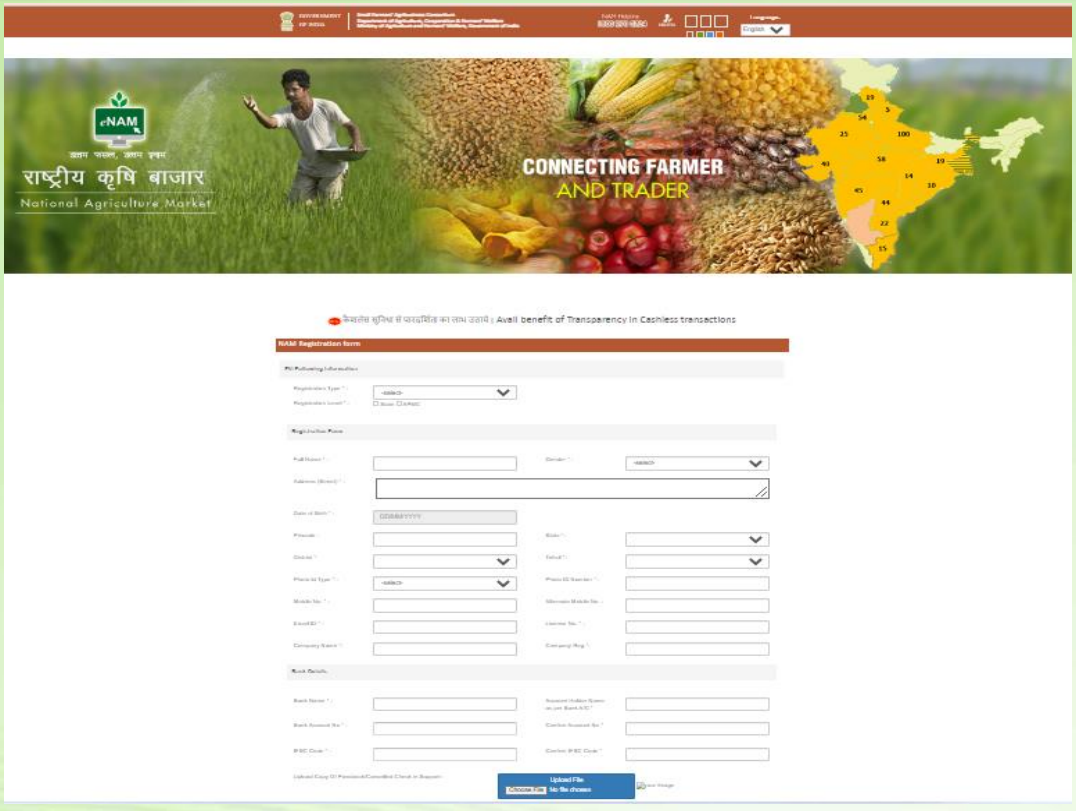

- अब आपके सामने रजिस्ट्रेशन फॉर्म खुल कर आएगा।
- आपको फॉर्म में निम्नलिखित जानकारी दर्ज करनी होगी।
  - ➢ रजिस्ट्रेशन टाइप
  - ➢ रजिस्ट्रेशन लेवल
  - ➢ फुल नेम

- जेंडर
- एड्रेस
- डेट ऑफ बर्थ
- पिन कोड
- डिस्ट्रिक्ट
- फोटो आईडी टाइप
- मोबाइल नंबर
- ईमेल आईडी
- कंपनी नेम
- स्टेट
- तहसील
- फोटो आईडी नंबर
- अल्टरनेट मोबाइल नंबर
- लाइसेंस नंबर
- कंपनी रजिस्ट्रेशन
- बैंक नेम
- अकाउंट होल्डर नेम
- बैंक अकाउंट नंबर
- आईएफएससी कोड

- इसके पश्चात आपको पासबुक या फिर कैंसिल चेक एवं आईडी प्रूफ को स्कैन करके अपलोड करना होगा।
- अब आपको सबमिट के विकल्प पर क्लिक करना होगा।
- इस प्रकार आप एफपीओ योजना के अंतर्गत आवेदन कर पाएंगे।

लॉगिन करने की प्रक्रिया

- सर्वप्रथम आपको राष्ट्रीय कृषि बाजार की आधिकारिक वेबसाइट पर जाना होगा
- अब आपके सामने होम पेज खुलकर आएगा।
- इसके बाद आपको एफपीओ के विकल्प पर क्लिक करना होगा।
- अब आपको लॉगिन के विकल्प पर क्लिक करना होगा।
- इसके बाद आपके सामने लॉगइनफॉर्म को लेकर आएगा।
- अब आपको यूजरनेम पासवर्ड तथा कैप्चा कोड दर्ज करना होगा।
- इसके बाद आपको लॉगिन के विकल्प पर क्लिक करना होगा।
- इस प्रकार आप लॉगिन कर पाएंगे।

"हिन्दी एक जानदार भाषा है, वह जितनी बढ़ेगी देश को उतना ही लाभ होगा।"

- जवाहरलाल नेहरू

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
Agrisearch with a human touch

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान - झारखण्ड
IARI - JHARKHAND 2015
जीव जीवस्य कृषि

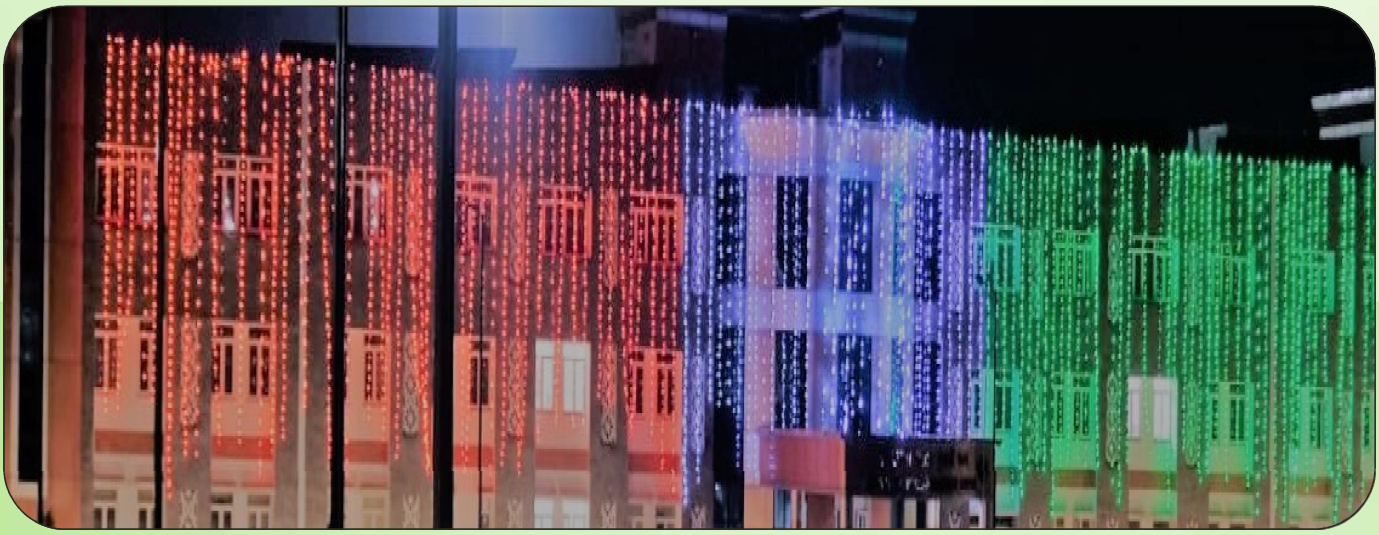

INTERNATIONAL YEAR OF MILLETS 2023

G20 भारत 2023 INDIA
वसुधैव कुटुम्बकम्
ONE EARTH • ONE FAMILY • ONE FUTURE

आज़ादी का अमृत महोत्सव

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क विवरण :
प्रोफेसर (डॉ.) विशाल नाथ विशेष कार्य अधिकारी

भाकृअनुप– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान – झारखण्ड
गौरिया करमा, हजारीबाग, झारखण्ड– 825405
E-mail : iarijharkhand@gmail.com

नोट– पत्रिका में दी गई तकनीकी जानकारी, ऑकडे एवं विचारों के संपादक मंडल/संपादक उत्तरदायी नही है। इस हेतु लेखक से सीधे संपर्क करें।